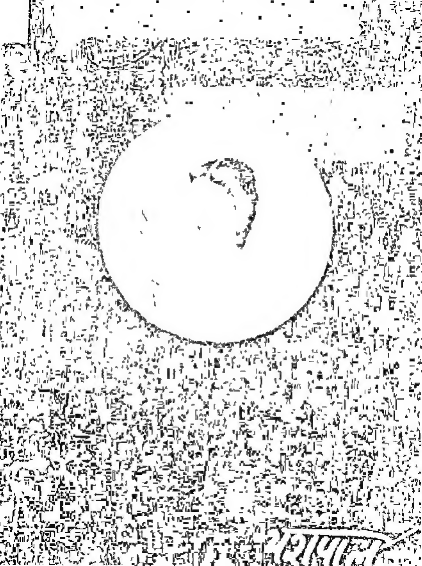

फूलों का कुर्ता

(कहानी संग्रह)

अपनी लाज बचाने के विश्वास में अपना दामन उठाकर मुंह ढक लेने वाला समाज कैसे उघड़ता जा रहा है ? यह इन कहानियों से स्पष्ट है।

"विधाता ने लेखक को प्रतिभा और शक्ति मुक्त-हस्त होकर दी है। कोरे परिश्रम से यह कला सम्भव नहीं। हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता ही रहा है राम-कृपा से ऐसी रचनाओं के कारण वह देने योग्य भी हो गया है।"

श्री मैथिलीशरण गुप्त

२०१
कहानी

६०५०..
५.२.६८

फूलो का कुर्ता

(कहानी संग्रह)

६०४०
४.३.६८

यशपाल

(परिमार्जित चौथा संस्करण)

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

तीन रुपये

प्रकाशक—
विप्लव कार्यालय
ल ख न ऊ

अनुवाद सहित सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरक्षित

६०४०
४-२-६८

समर्पण

सच कहदूं ए बरहमन, गर तू बुरा न माने,
तेरे सनमकदों के बुत हो गये पुराने !”

(हे पुरातन पंथी विश्वासी, सत्य तुझे कड़वा तो लगेगा परन्तु सच्चाई यह है कि तेरे विश्वास मन्दिर के आराध्य-देव अब जर्जर और निस्सत्व हो गये हैं।)

यशपाल

कहानी

फूलो का कुरता भूमिका
आतिथ्य
भवानी माता की जय
शिव-पार्वती
खुदा की मदद
प्रतिष्ठा का बोझ
डरपोक कश्मीरी
धर्म-रक्षा
जिम्मेवारी

भूमिका

फूलों का कुरता

मुझे यदि संकीर्णता और संघर्ष से भरे नगरों में ही अपना जीवन बिताना पड़ता तो मैं या तो आत्महत्या कर लेता या पागल हो जाता। भाग्य से बरस में तीन मास के लिये कालिज में अवकाश हो जाता है और मैं नगरों के वैमनस्यपूर्ण संघर्ष से भाग कर पहाड़ में, अपने गाँव चला जाता हूँ।

मेरा गाँव आधुनिक सभ्यता से बहुत दूर, हिमालय के आंचल में है। भगवान की दया से रेल, मोटर और तार के अभिशाप ने इस गाँव को अभी तक नहीं छुआ है। पहाड़ी भूमि अपना प्राकृतिक शृंगार लिये है। मनुष्य उसकी उत्पादन शक्ति से संतुष्ट है।

हमारे यहाँ गाँव बहुत छोटे-छोटे है। कहीं-कहीं तो बहुत ही छोटे, दस-बीस घर से लेकर पाँच-छः घर तक और बहुत पास-पास। एक गाँव पहाड़ की तलहटी में है तो दूसरा उसकी ढलवान पर। मुँह पर हाथ लगा कर पुकारने से दूसरे गाँव तक बात कह दी जा सकती है। गरीबी है, अशिक्षा भी है परन्तु वैमनस्य और असंतोष कम है।

बंकू साह की छप्पर से छायी दूकान गाँव की सभी आवश्यकतायें पूरी कर देती है। उनकी दूकान का बरामदा ही गाँव की चौपाल या क्लब है। बरामदे के सामने दालान में पीपल के नीचे बच्चे खेलते है और ढोर बैठ कर जुगाली भी करते रहते हैं।

सुबह से जोर की बारिश हो रही थी। बाहर जाना सम्भव न था इसलिये आजकल के एक प्रगतिशील लेखक का उपन्यास पढ़ रहा था।

कहानी थी :—"एक निर्धन कुलीन युवक का विवाह एक शिक्षित युवती से हो गया था। नगर के जीवन में युवक की आमदनी से गुजारा चलता न देखकर युवती ने भी नौकरी कर कुछ कमाना चाहा परन्तु यह बात युवक के आत्मसम्मान को स्वीकार न थी। उनके संतान पैदा हो गई, होनी ही थी। एक, दो और फिर तीन बच्चे। महंगाई के जमाने में भूखों मरने की नौबत आगई। उनका बीमार हो जाना। अपनी स्त्री की राय से नवयुवक का एक सेठजी के यहाँ नौकरी करना और उनका खुशहाल हो जाना।

कर ले जा रहा था। बक्कू साह की दुकान के सामने पीपल के नीचे बच्चों को खेलते देखा तो उधर ही आ गया।

सन्नू को खेल में आया देखकर सुनार का छः बरस का लड़का हरिया चिल्ला उठा—"आहा, फूलो का दूल्हा आया!"

दूसरे बच्चे भी उसी तरह चिल्लाने लगे।

बच्चे बड़े-बूढ़ों को देखकर बिना बताये-समझाये भी सब कुछ सीख और जान जाते हैं। यों ही मनुष्य के ज्ञान और संस्कृति की परम्परा चलती रहती है। फूलो पाँच बरस की बच्ची थी तो क्या? वह जानती थी, दूल्हे से लज्जा करनी चाहिए। उसने अपनी माँ को, गाँव की सभी भली स्त्रियों को लज्जा से घूँघट और परदा करते देखा था। उसके संस्कारों ने उसे समझा दिया था, लज्जा से मुँह ढक लेना उचित है।

बच्चों के उस चिल्लाने से फूलो लजा गयी परन्तु वह करती तो क्या? एक कुरता ही तो उसके कंधों से लटक रहा था। उसने दोनों हाथों से कुरते का आँचल उठाकर अपना मुख छिपा लिया।

छप्पर के सामने, हुक्के को घेर कर बैठे प्रौढ़ भले आदमी फूलो की इस लज्जा को देखकर कहकहा लगा कर हँस पड़े।

काका रामसिंह ने फूलो को प्यार से धमका कर कुरता नीचे करने के लिये समझाया।

शरारती लड़के मजाक समझ कर 'हो-हो' करने लगे।

बक्कू साह के यहाँ दवाई के लिये थोड़ी अजवायन लेने आया था परन्तु फूलो की सरलता से मन चुटिया गया। यों ही लौट चला।

सोचता जा रहा था—बदली स्थिति में भी परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने के प्रयत्न में क्या से क्या हो जाता है।

प्रगतिशील लेखकों की उघाड़ी-उघाड़ी बातें·······।

हम फूलो के कुरते के आँचल में शरण पाने का प्रयत्न कर उघड़ते चले जा रहे हैं और नया लेखक हमारे चेहरे से कुरता नीचे खींच देना चाहता है····।

अगस्त १९४९ यशपाल

"एक दिन राज खुला कि नवयुवक की खुशहाली का मोल उनकी अपनी योग्यता नहीं, उनकी पत्नी की इज्जत थी। पति ने क्रोध के आवेश में पत्नी का गला घोंटने का यत्न किया। पत्नी ने गिड़गिड़ा कर क्षमा माँगी—जो कुछ किया इन बच्चों के लिये किया। पत्नी ने केवल बच्चों को पाल सकने के लिये प्राण-भिक्षा माँगी। पति सोचने लगा—मेरी इज्जत का मोल अधिक है या तीन बच्चों के प्राणों का ?"

मैंने ग्लानि से पुस्तक पटक दी। सोचा—यह है हमारी गिरावट की सीमा ! आज ऐसा साहित्य बन रहा है जिसमें व्यभिचार के लिये सफाई दी जाती है। यह साहित्य हमारी संस्कृति का आधार बनेगा। हमारा जीवन कितना छिछला और संकीर्ण होता चला जा रहा है। स्वार्थ के बावलेपन की छीना-झपटी और मारामार हमें बदहवास किए दे रही है। हम अपनी उस मानवता, नैतिकता और स्थिरता को खो चुके हैं जिसका विकास हमारे आत्मद्रष्टा ऋषियों ने संकीर्ण सांसारिकता से मुक्त होकर किया था। हम स्वार्थ की पट्टी आँखों पर बाँध कर भारत की आत्मज्ञान की संस्कृति के परम शान्ति के मार्ग को खो बैठे हैं।""क्या पेट और रोटी ही सब कुछ है ? इस से परे मनुष्यता, संस्कृति और नैतिकता कुछ नहीं है ? ऐसे ही विचार मन में उठ रहे थे।

बारिश थम कर धूप निकल आई थी। घर में दवाई के लिये कुछ [illegible] की जरूरत थी। घर से निकल पड़ा कि बंकू साह के यहाँ से [illegible]।

बंकू साह की दुकान के बरामदे में पाँच-सात भले आदमी बैठे थे। हुक्का चल रहा था। सामने गाँव के बच्चे '[illegible]' का खेल खेल रहे थे। साह की पाँच बरस की लड़की [illegible] भी उन्हीं में थी।

पाँच बरस की लड़की का पहनना और ओढ़ना क्या ? एक कुर्ती कंधे [illegible] था। [illegible] हमारे गाँव में फैशन भर हुआ 'नंगा' [illegible] थी।

[illegible] उस [illegible], [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] थे। [illegible] [illegible] और [illegible]: [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]

कर ले जा रहा था। बंकू साह की दुकान के सामने पीपल के नीचे बच्चों को खेलते देखा तो उधर ही आ गया।

मन्नू को खेल में आया देखकर सुनार का छः बरस का लड़का हरिया चिल्ला उठा—"आहा, फूलो का दूल्हा आया!"

दूसरे बच्चे भी उसी तरह चिल्लाने लगे।

बच्चे बड़े-बूढ़ों को देखकर बिना बताये-समझाये भी सब कुछ सीख और जान जाते हैं। यों ही मनुष्य के ज्ञान और संस्कृति की परम्परा चलती रहती है। फूलो पाँच बरस की बच्ची थी तो क्या? वह जानती थी, दूल्हे से लज्जा करनी चाहिए। उसने अपनी माँ को, गाँव की सभी भली स्त्रियों को लज्जा से घूंघट और परदा करते देखा था। उसके संस्कारों ने उसे समझा दिया था, लज्जा से मुंह ढक लेना उचित है।

बच्चों के उस चिल्लाने से फूलो लजा गयी परन्तु वह करती तो क्या? एक कुरता ही तो उसके कंधों से लटक रहा था। उसने दोनों हाथों से कुरते का आँचल उठाकर अपना मुख छिपा लिया।

छप्पर के सामने, हुक्के को घेर कर बैठे प्रौढ़ भले आदमी फूलो की इस लज्जा को देखकर कहकहा लगा कर हँस पड़े।

काका रामसिंह ने फूलो को प्यार से धमका कर कुरता नीचे करने के लिये समझाया।

शरारती लड़के मज़ाक समझ कर 'हो-हो' करने लगे।

बंकू साह के यहां दवाई के लिये थोड़ी अजवायन लेने आया था परन्तु फूलो की सरलता से मन चुटिया गया। यों ही लौट चला।

सोचता आ रहा था—बदली स्थिति में भी परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने के प्रयत्न में क्या से क्या हो जाता है।

प्रगतिशील लेखकों की उघाड़ी-उघाड़ी बातें·······।

हम फूलो के कुरते के आँचल से शरण पाने का प्रयत्न कर उघड़ते चले आ रहे हैं और नया लेखक हमारे चेहरे से कुरता नीचे खींच देना चाहता है····।

अगस्त १९४०, यशपाल

आतिथ्य

रामशरण को भारत सरकार के अर्थ-विभाग में नौकरी करते तीन वर्ष बीत चुके थे। इतनी बड़ी सरकार की व्यवस्था में जगह और उसका आश्रय पाकर रामशरण ने अनेक ऐसी सुविधायें पाई थीं जो जन-साधारण के लिये स्वप्न-मात्र थीं। प्रतिवर्ष मैदानों को तड़पा देने वाली गर्मी से भागकर छः मास तक शिमला हिल पर निवास और छः मास तक देहली में शाही शहर की रौनकें।

रामशरण का जन्म हुआ था मेरठ जिले के एक गांव में, जहाँ भूमि ऋतु-ऋतु में अपने उदर पर हल के फाले का प्रहार सहकर, सदैव उदारता से बीज ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत रहती है। हरी-भरी फसलों के आवरणों से उस भूमि की नग्नता कुछ ही दिन ढक पाती है कि किसान फसल को काट कर अपने खलिहानों में समेट लेते हैं। जमीन बेचारी पीड़ित और उदास हो जाती है और अपने को ढक पाने की आशा में फिर हल का फाल सहने के लिये तैयार हो जाती है। उन उपजाऊ प्रदेशों का रूप मनुष्य के उपयोग से छिन्न-भिन्न कर सीधा मुण्डित की भांति हो गया है जिसे बाल-बच्चों और वसन के बोझ में दब कर कभी सिंगार करने या मुस्कराने का अवसर नहीं मिलता। उसकी ओर निगाह जाने से किसी रसिक युवक का मन गुदगुदा नहीं उठता।

रामशरण अपने घर में जमींदार के नाते को त्यागता था और दफ्तर में सरकार के आय-व्यय का हिसाब, करोड़ों की संख्या तक करके अपने मस्तिष्क को थका देता था। अवकाश के समय वह आस-पास की पहाड़ियों पर उन्मुक्त वायु में सीना फुला, गहरे सांस लेकर, सीधे दूर तक निगाह दौड़ा कर प्रकृति का आनन्द लेता रहता। अप्रैल और मई के महीनों में शिमले की पहाड़ियां

फूलों के रंग लेकर, खिलखिलाकर हंसती खेलती जान पड़ती। वर्षा के महीनों में आकाश पर निरन्तर गड़गड़ाहट बना रहता, बादल आकाश में बरस-बरस कर सन्तुष्ट न होते। वे उमड़-उमड़ कर घरों के भीतर चले आते। धरती धूप की मुस्कराहट के लिये प्रतीक्षा में आकुल हो जाती पर बादल नवोढ़ा रूपगर्विता मानिनी की भांति मान किये रहते। उनके मान का अंत प्रेमी के व्याकुल हो जाने पर भी नहीं होता।······ और फिर जब प्रकृति नायिका के मान की घटाटोप उदासी को छोड़ कर मुस्करा उठती तो सितम्बर बीतते-बीतते घाटियों पर फूलों का पागलपन छा जाता। रामशरण का मन पुलक कर व्याकुल हो उठता। सोचता—इस चामत्कारिक देश में दृष्टि के परे जाने क्या-क्या है ?

रामशरण ने उन पहाड़ी देशों में दूर-दूर तक घूम आये अनेक साहसी व्यक्तियों से पूछ-पूछ कर बहुत सी अद्भुत कथायें, वृतान्त और वहाँ की प्राकृतिक छटा, नारी रूप और विचित्र आचार-व्यवहार की बातें सुनी थीं। सुना था, उस देश के उदार और भोले निवासी भटक कर अपने गांव में आ गये अतिथि के सत्कार का अवसर पाने के लिये आपस में झगड़ बैठते हैं; वहाँ चम्पा के रंग की गृह-वधुएँ अतिथि की थकावट मिटाने के लिये उसके शरीर को अपने हाथों दबाती हैं, अपने सामर्थ्य भर अतिथि के लिये कोई सुविधा दुर्लभ नहीं रहने देतीं। वह देश देखने के लिये रामशरण का मन किलक उठता था।

उस बरस जब अक्तूबर में सरकारी दफ्तर शिमला से देहली जा रहा था, रामशरण ने तीन मास की छुट्टी ले ली। उसका विचार था, दूर-दूर तक पहाड़ों में घूमेगा और जाड़ों में शिमले को बरफ की रजाई ओढ़ कर सोते हुए देखेगा।

रामशरण एक झोले में मामूली सा सामान, एक कम्बल और बल्लम लगी लाठी लेकर शिमले से चल पड़ा। वह 'मशोब्रा', 'ठियोग', 'नारकण्डा' और 'बागी' होता हुआ चलता चला जा रहा था कि ऐसी जगह पहुंचे जो आधुनिक सभ्यता के प्रपंचपूर्ण प्रभाव से मुक्त और स्वाभाविक रूप से सरल हो। वह 'रामपुर बुशैर' से आगे निकल गया।

रामशरण थक जाने के कारण सड़क पर गिरते एक छोटे से पहाड़ी झरने के समीप बैठ गया था। झोले में से निकाल उसने कुछ सूखा मेवा खाया और पानी पीकर विश्राम करने लगा। उसकी पीठ के पीछे पहाड़ी चट्टान थी।

ऊंचे वृक्षों में छनकर आती चितली धूप मुखद जान पड़ रही थी। सम्मुख घाटी में उतरते 'तोष' के जगलो पर तैरती उसकी दृष्टि नीचे तलहटी में छिटके गांवों की ओर लगी हुई थी। 'चोघू' की फसल पक कर पत्ते पीले पड़ गये थे और अनाज की सुर्ख बालें धूप में दहक रही थी। कुछ दिन पहले कटी मक्का के भुट्टे मकानो की ढलवा छतों पर सुखाने के लिये फैला दिये गये थे, इससे छतें केसरिया चादरों से ढकी जान पड़ रही थीं। रामशरण की आंखों के सामने तो यह था परन्तु उसकी कल्पना कुछ और ही देख रही थी।

सड़क के पिछले मोड़ पर, नीचे के खेत से मनुष्य के गले का शब्द सुन कर उसने घूमकर देखा था तो दिखाई दिया कि दो पहाड़नें उसकी ओर निगाह किये आपस में हंस रही थीं। उसने सोचा—कितनी सरलता है इन लोगों में? अच्छा होता यदि वह दो बातें उनसे कर लेता। अब तो चूक गया, फिर ऐसा अवसर आने पर सही...।

झरने के समीप ही एक पगडण्डी, पहाड़ी से उतर सड़क पार कर रही थी। कदमों की आहट मिली। पगडण्डी से बढ़कर रगीन टोपी पहने एक बूढ़ा, उसके समीप आगया। बूढ़ा हाथ की लाठी एक ओर रखकर जमीन पर बैठ गया। उसने मुट्ठी होठों पर रखकर 'बाबू' से एक सिगरेट मांग ली। रामशरण सिगरेट-तम्बाकू के प्रति पहाड़ियों की उत्सुकता से परिचित था। चलते समय कई डिबिया सिगरेट उसने झोले में रख ली थीं। एक सिगरेट निकाल कर उसने बूढ़े को भेंट कर दी और सामने तलहटी में तथा आस-पास के गावों के नाम पूछने लगा।

रामशरण ने पहाड़ी पर चढ़ती पगडण्डी की ओर सकेत करके पूछा— "यह रास्ता कहां जाता है?"

"लगोटी को" बूढ़े ने तम्बाकू के धुयें से खासते हुये उत्तर दिया, "आगे सिरवा है फिर झोरा। ऐसे ही गांव-गाव चीनी तक चला जाता है। उसके आगे छोटा तिब्बत है। हम लोग इन्ही रास्तों से आते-जाते है। सड़क तो बहुत घूमकर जाती है। इन पगडण्डियों से दो दिन की मंजिल एक दिन में हो जाती है।"

"रास्ते में घने जंगल होंगे।" रामशरण ने पूछा, "आदमी राह भूल जाय तो?"

"जगल भी है ग्राम भी है। सब बसा हुआ इलाका है।"

"जंगल में क्या जानवर मिलता है?"

"घुरड़ है, रीछ है कभी बाघ भी होता है, चीता बहुत है।"

"जानवर आदमी को नहीं मारता ?"

"आदमी को कम छेड़ता है, जानवर पर पड़ता है।"

बूढ़ा सिगरेट समाप्त कर रामराम कह अपनी राह चल दिया और रामशरण पगडण्डी पर चढ़ने लगा। मन में सोचता जा रहा था—अपने को राह भूलने का भय क्या ? जहाँ पहुँच गये, वहीं अपने को जाना है; कोई नयी जगह हो। कुछ दूर चढ़ वह उस टीले की चोटी पर पहुँच गया। अनेक टीलों की पीठों पर बैठे उस टीले की चोटी पर खड़े होकर, वह अपने आपको साधारण पृथ्वी से बहुत ऊँचे अनुभव कर रहा था। उसने पीठ पीछे घूमकर देखा —सूर्य पश्चिम की ओर पहाड़ों की ऊँची दीवार की चोटी छू रहा था। संध्या आ जाने से उसे भय नहीं लगा। सामने 'तोष' और खर्शू के पेड़ों से छाया एक और छोटा सा टीला था और उसके पार ऊँचे पहाड़ की ढलवान पर छोटा सा गांव सूर्य की पीली पड़ती किरणों में चमक रहा था। रामशरण रात वह उसी ग्राम में एक अनजान अतिथि के रूप में बिताना चाहता था। कितनी ही कल्पनाओं से उसका मस्तिष्क भरा हुआ था।

रामशरण जंगल से छाये टीले पर चढ़ रहा था तो सूर्य की किरणें लोप हो गयीं और चढ़ाई अधिक आड़ी होने लगी। उसके सीने की धड़कन के प्रत्येक श्वास के साथ अँधेरा गहरा होता जा रहा था। झाड़ियों और वृक्षों के रंग-विरंगे पत्ते और आकार सब काजल के खिलौने बनते जा रहे थे। घने पेड़ों के नीचे घनी घास में पगडण्डी कभी की छिप जा चुकी थी। प्रकाश की आशा में आँखें ऊपर की ओर उठाने से सिर पर केवल काले पत्तों का घना छाजन दिखाई देता था। रामशरण केवल दिशा के अनुमान से चल रहा था। अनुमान से टीले की चोटी बहुत दूर पीछे छूट चुकी थी।

रामशरण सामर्थ्य भर तेजी से चलने लगा। उसके शरीर के रोम किसी भी आहट से बार-बार सिहर उठते थे—यदि इस समय कोई भालू या चीता आ जाय ! उसने साहस बनाये रखने के लिये निश्चय किया—जानवर के मुंह खोलकर झपटने पर वह जानवर के मुंह में बल्लम डाल कर धंसा देगा। 'खर्शू' के कंटीले पत्ते बार-बार उसके गालों और हाथों को खरोंच देते थे। चढ़ाई पर उसके आगे बढ़ने वाले कदम के लिये जमीन मौजूद रहती थी परन्तु उतराई शुरू हो जाने पर आगे बढ़ना और भी कठिन हो गया। वह बार-बार गिरते-गिरते बचता। गिर पड़ता तो जाने कहां पहुँच जाता ? अगला कदम

बालिस्त भर नीचे पड़ेगा या गज भर या पचास हाथ कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। उसके पांव लड़खड़ाने लगे और चोटी से एड़ी तक पसीना बहने लगा।

रामशरण ने बहुत आड़े समय के लिये सम्भाल कर रखी हुयी झोले में से टार्च निकाल ली और बल्लम के सहारे एक-एक कदम उतरने लगा। घने अंधेरे में ऐसी अजानी जगह आ मरने की अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। पल-पल पर रीछ और चीते का ख्याल आ रहा था। ऐसे समय यदि जानवर आ जाय तो कैसे टार्च सम्भाले और कैसे बल्लम थामकर उसका सामना करे? सुना था, जंगली जानवर आदमी की आवाज से घबराते हैं। सोचा, जोर-जोर से गाने लगे परन्तु मुख से शब्द न निकल पाता था। वह सोचने लगा— पहाड़ जैसी बुरी जगह और नहीं। देश देखना था तो कलकत्ता, बम्बई जाता।

रामशरण की टार्च की गोल-गोल रोशनी में एक पगडण्डी उसका रास्ता काटती हुई दिखाई दी। पछताया, अब तक वह यों ही भटक रहा था। वह उतराई की ओर चल पड़ा। एक घण्टे के करीब तेज चाल से चलने के बाद वह घने वन से बाहर हो गया। वन के बाहर अंधेरा उतना गहरा न था। आकाश में छाये उजले बादलों से कुछ प्रकाश भी आ रहा था। घड़ी देखी, साढ़े सात ही बजे थे। कुछ ही दूर आगे रोशनी के धब्बे जैसे दिखाई दिये। समझा गांव आ गया। वह धीमे-धीमे उसी ओर चलने लगा। रामशरण का भय और चाल की तेजी कम हुई तो ठंडी पहाड़ी हवा शरीर से लगने से कप-कपी आने लगी। उसने कम्बल ओढ़ लिया और अजाने गांव की ओर बढ़ने लगा। अपरिचित सरल पहाड़ियों के घर रात बिताने की कल्पना फिर जागने लगी। गांव बहुत छोटा था, यही दस-बारह घर। मकान नीचे और छोटे, पहाड़ी मकानों की तरह दो मंजिले। पहली मंजिल नीचे और दबे हुये किवाड़ों की ऊंचाई तक। दूसरी मंजिल ढलुआ छत के कारण बन जाने वाली तिकोन में समायी हुयी।

रामशरण पहले ही मकान के पास पहुँचा था कि एक कुत्ता गुर्राकर भौंकने लगा, फिर दूसरा और फिर बहुत से कुत्ते भौंकने लगे। कुत्तों के भौंकने से रामशरण को भय न लगा। कुत्ता मनुष्य की बस्ती का संकेत और मनुष्य का साथी है। उसने कुत्तों को पुचकारा परन्तु उनकी ओर बढ़ने का साहस न हुआ। उसने दूर से ही पुकारा—"कोई है? जरा देखना, मुसाफिर है।"

रामशरण के तीन बार पुकारने पर मकान के ऊपर की मंजिल की खिड़की खुली। पहाड़ी बोली में आवाज आई—"कौन है इस समय?"

"मुसाफिर" रामशरण ने उत्तर दिया।

खिड़की से एक चिराग हाथ की ओट में बाहर निकला। चिराग के पीछे एक चेहरा दिखाई दिया। समीप के दो और मकानों की ऊपर की खिड़कियों से भी पुकार सुनाई दी—"कौन है इस समय? कैसा मुसाफिर?"

सब से पहले खिड़की से बाहर निकलने वाले चेहरे ने दोहराया—"कैसा मुसाफिर? किस गाँव से आया है? कहाँ जाना है?"

समीप के मकानों से दो आदमी किवाड़ खोलकर बाहर आये।

"शिमले से आया हूँ; ऐसे घूमने सैर करने के लिये" रामशरण ने उत्तर दिया।

बाहर निकल आया आदमी खिड़की से बात करने वाले की ओर देखकर बोला—"बदमाश है।" और उसने रामशरण की ओर घूम कर धमकाया, "चले जाओ! यहाँ दुकान-सराय नहीं है। बदमाश! चोर!......आगे और चले जाओ! भाग जाओ!"

रामशरण के पाँव तले से जमीन निकल गयी। पीछे छूटा घना वन, रीछ, [illegible] और आकाश में उमड़े अंधेरा भरे बादल सब एक साथ याद आ गये।

रामशरण पल भर सहमा उन लोगों की ओर देखता रहा और फिर [illegible] बोला—"सड़क से भटका परदेशी हूँ। रात [illegible] के लिये कहीं जगह दे दो, गरीब पर मेहरबानी होगी।"

[illegible] आदमी भी नीचे उतर आया और उसके पीछे [illegible] आदमी भी समीप आ गया। उस आदमी की बगल में [illegible] था। [illegible] जाती है।

[illegible]

[illegible]

की ओर संकेत कर शरण की प्रार्थना कर रहा था परन्तु वे लोग कुछ सुनने के लिये तैयार न थे। उसे गाँव से भी कदम पीछे हटाकर, दाव दिखाकर उन्होंने ताकीद कर दी—"अगर इससे आगे कदम बढ़ाया तो काट कर कुत्तों को खिला देंगे।" और वे लोग लौट गये।

रामशरण वन में लौटकर कहाँ जाता ? जंगली जानवरों से रक्षा पाने के लिये वह बस्ती के जितने समीप सम्भव था, एक अखरोट के पेड़ के नीचे बैठ गया। कम्बल में शरीर को लपेट लिया और पेड़ के तने के सहारे टिक गया। टार्च और बल्लम उसने सम्भाल कर तैयारी से रख लिये। कुछ देर बाद बूँदें टप-टप पड़ने लगीं और हवा का जोर बढ़ गया। रामशरण का सिर भूख और थकान से दरद करने लगा, सर्दी से दाँत बजने लगे। ज्यों-ज्यों जाड़ा अधिक लग रहा था सिर का दरद बढ़ता जा रहा था।

रामशरण ने अपना सिर और शरीर कस कर कम्बल में लपेट लिया। उसे अपनी मूर्खता पर रुलाई आ रही थी—कब दिन निकले और वह सड़क पर पहुँच कर शिमले की ओर लौट जाये। जंगल की ओर से अजीब सी आवाज आई। उसके उत्तर में गाँव के कुत्ते जोर-जोर से भौंकने लगे। रामशरण का कलेजा मुँह को आने लगा। समय बीतता न जान पड़ता था। कम्बल के भीतर कलाई की घड़ी पर टार्च जला कर समय देखा, केवल नौ ही बजे थे। वह और भी निराश हो गया—सवेरा होने तक वह शायद ही बच पायेगा। सिर के दरद की ओर से ध्यान हटाने के लिये वह घुटने पर सिर टिकाकर साँसें गिनने लगा।

"तीन सौ ग्यारह तीन सौ बारह" रामशरण अपने साँस गिन रहा था। उसे जान पड़ा, कोई उसके कंधों को दबा रहा है और कम्बल खींच रहा है—रीछ ! बाघ ! वह भय से और भी दब गया। मुँह उघाड़ते ही जानवर उसे नोच लेगा। मुँह ढक कर सख्त भूल की। अब मुँह न उघाड़ने से क्या जानवर छोड़ देगा ? कलेजा उसका जोर से धड़क रहा था। सोचा—झपाटे से कम्बल उघाड़कर, टार्च जला जानवर को चौंधिया दे और बल्लम से हमला करदे। रामशरण साँस रोके टार्च का बटन टटोलने लगा।

रामशरण उछल कर कम्बल फेंक देने को ही था कि कान में आवाज पड़ी—"ओ मुसाफिर !"

रामशरण ने ध्यान से सुना। बहुत धीमी आवाज थी—"ओ परदेसिया, ओ मुसाफिरा !"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ने फिर कुछ कहा और फिर उत्तर दिया।

रामशरण केवल इतना समझ पाया कि उस साथ आने वाले आदमी ने पहली दफे पाहुने और आग की बात और दूसरी दफे [illegible] की बात कही थी।

रामशरण का हृदय धड़क रहा था। [illegible] लड़की दोनों हाथों में मिट्टी की [illegible] जैसी अंगीठी थामे [illegible]। अंगीठी में अंगारे थे और उनकी झलक में लड़की का चेहरा उजाले में [illegible] की तरह दमक रहा था।

लड़की ने अंगीठी दीवार से सटी खाट के समीप रख दी और रामशरण को सम्बोधन किया—"पाहुने आग के पास बैठो, जाड़ा है।"

रामशरण के जबड़े अभी तक सर्दी से जकड़े हुये थे और रह-रह कर शरीर पर फुरेरी दौड़ जाती थी। उसे संकोच अनुभव हुआ परन्तु वह आग के समीप खाट पर बैठ गया। उसे साथ लाने वाला मर्द भी आग के पास जमीन पर बैठ गया और उसने अपनी जेब टटोलकर एक पोटली निकाली। लड़की एक छोटी सी चिलम ले आई।

मर्द धीमे-धीमे लड़की से बातें करता हुआ चिलम भरने लगा—"पड़ोसी बहुत खराब हैं। कोई देख तो नहीं रहा था?"……तूने चारों ओर देख लिया

था ?""""यह देश के आदमी बड़े बदमाश होते हैं, सब जानते है। 'ररोड़ी' गाँव में रत्तू की घर वाली को एक पंजाबी भगा ले गया। कोई इन लोगों को घर में पाँव कैसे रखने दे ? रत्तू और मनोया औरत को ढूंढ़ने बागों तक गये, मिली नहीं। मिलती तो""(उसने गाली दी) के टुकड़े कर देते और """"(उसने भागी हुई औरत को गाली दी) की नाक काट लेते।" देश के लोग बड़े बदमाश होते हैं। ' इस गाँव के लोग बड़े ज़ालिम हैं, किसी ने देखा तो नहीं। लड़की मर्द की बात पर हुंकारा भरती जा रही थी।

लड़की ने रामशरण के पाँव को हाथों में लेने का यत्न किया। रामशरण सहम गया।

"हाँ-हाँ पाँव आग पर सेक दो" मर्द बोला।

रामशरण ने बाधा नहीं दी। लड़की उसके दाये और बाँये पाँओं को हाथ में लेकर बारी-बारी से सेकने लगी। शीघ्र ही रामशरण का जाड़ा मिट गया।

कुछ देर में जीने से एक जवान स्त्री उतरी। स्त्री के एक हाथ में जल का लोटा और दूसरे हाथ में छोटी थाली थी। थाली में रखी मकई की रोटी से भाप उठ रही थी। रोटी की सोंधी महक कोठरी भर में फैल गई। थाली में कुछ भीगा हुआ गुड़ और बहुत सा मक्खन रखा था।

लड़की ने दीवार के सहारे रखा चटाई का बैठन अंगीठी के समीप बिछा दिया। स्त्री ने जल का लोटा ओर थाली बैठन के समीप रखकर मुस्करा कर कोमल स्वर में कहा—"खाओ पाहुने जी !"

रामशरण ने मर्द की ओर देखा और अपना माथा छू कर कहा—"बहुत दरद हो रहा है, खाया नहीं जायगा।"

"हाँ" मर्द ने हामी भरी, "जाड़े में और चलने की थकावट से होगा। नीचे देस के आदमी बहुत कच्चे होते है।"

मर्द हाथ की चिलम सुलगा चुका था। चिलम रामशरण की ओर बढ़ा कर बोला—"लो, दो दम लगा लो। गरमी आजायगी तो ठीक हो जायेगा।"

रामशरण को चिलम पीने का अभ्यास न था। उसने इनकार कर दिया। मर्द ने अधिकार के स्वर में आग्रह किया—"पियो-पियो, खून में गरमी आयेगी, तबीयत ठीक होगी।"

रामशरण ने चिलम बेबसी में लेकर दो साँस खींच लिये। सिर चकरा कर दिल घिर सा गया और सिर दरद की बात भूल सी गयी।

लड़की की मां ऊपर चली गई थी। रोटी की एक थाली में दूध और दूसरे हाथ की उंगलियों पर मुट्ठी भर मोठ लिये थी।

स्त्री रामशरण पर ममताभरी दृष्टि डालकर मुस्कान से कोमल स्वर से बोली—"पाहुने जी, मठ फांक लो, भूख मिट जायेगी।"

रामशरण जैसे विनय भाव से इनकार न कर सका था वैसे ही मोठ फांक कर दूध का कटोरा भी उसने पी लिया।

रामशरण को दूध पिलाकर लड़की की मां उससे रोटी खाने का आग्रह कर रही थी। अनिच्छा और कठिनता से रामशरण एक-एक टुकड़ा मुंह में डाल, चबाकर निगलने का यत्न कर रहा था। मर्द समीप बैठा—देश के लोगों के बदमाश होने और अपने गांव के लोगों के जालिम होने की बात दोहराता जा रहा था कि कोई देश में तो कैसी मुसीबत हो। इनके लोगों को तो दाव से दो टुकड़े कर कुत्तों को ही डाल दे तो सबसे अच्छा। दरवाजे पर पाहुना आये तो मुसीबत है। टिकाओ तो घर की औरत भगा ले जाय, गांव के लोग लड़ें। न टिकाओ तो धरम बिगाड़ो कि पाहुने को टिकाया नहीं……

स्त्री ममता और मुस्कानभरी निगाह से चौकसी पर बैठी थी कि पाहुना रोटी खाने में शिथिलता न करे। वह हाथ जोड़-जोड़ कर कहती जा रही थी—"धन भाग कि पाहुना-परमेश्वर द्वारे आये।"

रामशरण बहुत यत्न करने पर भी रोटी समाप्त नहीं कर सका। उसने हाथ खींच लिया।

स्त्री ने रामशरण के हाथ थाली में धुला दिये और बर्तन उठाकर चली गई।

लड़की ने ऊनी कपड़ों का एक बिस्तर लाकर खाट पर डाल दिया। बिछावन के सिलवट यत्न से दूर कर दिये और रामशरण को सम्बोधन कर बोली—"लेटो पाहुने जी!"

रामशरण थकावट से जर्जर होने पर भी बैठन से उठ बिस्तर पर लेट न सका क्योंकि मर्द दीवार का सहारा लिये घुटने पर टिके पीतल के नारियल को गुड़गुड़ाते हुये रामशरण से शिमले के बाजार में गुड़, चीनी, नमक और बीथू के भाव की बाबत बात कर रहा था। इन बातों से रामशरण का परिचय न था परन्तु पहले से ही संदिग्ध और बौखलाये हुये अपने यजमान के प्रश्नों का उत्तर कैसे न देता? वह कुछ न कुछ कहता ही जा रहा था।

कुछ देर बाद लड़की और लड़की की मा फिर जीने से उतर आई थी। स्त्री ने आते ही उलाहने के ढंग से हाथ हिलाकर पति पर नाराजगी प्रकट की—"कैसे हो तुम ? ······थके हुये पाहुने को आराम भी नहीं करने दोगे ? पाहुने जी तुम बिस्तर पर लेटो !" उसने रामशरण को सम्बोधन किया।

रामशरण बिस्तर पर लेट गया तो स्त्री उसके पैताने खाट से लगी जमीन पर बैठ कर उसके पाँव दबाने लगी।

रामशरण का सिर चक्कर खा रहा था। बिना अभ्यास के पिये तम्बाकू के प्रभाव से यह चक्कर अधिक भयानक था। उसने पाँव ऊपर खींच लिये परन्तु स्त्री पाँवों के साथ खिंचकर उस पर झुक गई—'हाय क्यों पाहुने जी, क्या पाहुने के पाँव नहीं दबाये जायेंगे।"

रामशरण का मस्तिष्क कुछ स्थिर हुआ तो सुनाई दिया—दीवार से पीठ टिकाये मर्द नारियल गुड़गुड़ाता हुआ फिर बड़बड़ा रहा था—"सब जानते हैं नीचे देस के लोग बदमाश होते हैं। ······गाँव के लोग बहुत जालिम हैं। " कोई पड़ोसी जान जायेगा तो क्या कहेगा ? " ······दरवाजे आये पाहुने को न टिकाओ तो देखना पड़े······ ।"

स्त्री कभी मुस्कराकर अपने पति की ओर देख कर कह देती—"आओ ऊपर जाकर लेटो न !" कभी रामशरण की ओर देखकर मुस्करा देती और बहुत मनोयोग से उसके पाँव, पिंडलियाँ, जाँघें, कमर और पीठ दबा रही थी।

रामशरण बेबस आँखें मूँदे लेटा था जैसे कोई डाक्टर उसके शरीर पर बिना दर्द के आपरेशन कर रहा हो। वह गाँव के बाहर 'हू हू' करती सर्द हवा और बूँदों के बीच अखरोट के पेड़ के नीचे, कम्बल में सिमिट कर बैठ रहने से भी अधिक परेशान था।

रामशरण को अनुभव हुआ कि बड़बड़ाने की आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। उसने जरा पलक उठाकर देखा, मर्द चला गया था परन्तु स्त्री उसके चेहरे की ओर देख रही थी—"अब थके हो पाहुने जी ?" उसने पूछा और वह जमीन से खाट पर आ गयी।

रामशरण ने फिर पलकें मूँद लीं। पलकें मूँदे रहने पर उसे एक विचित्र सी गंध अनुभव हो रही थी, घास की गंध, घी की गंध, पसीने की गंध, स्त्री की गंध। पलकें मूँदे रहने पर भी उसे दिखाई दे रहा था—माथे पर रूमाल बाँधे उस स्त्री का गोल-गोरा, गोल-गोल चेहरा, लम्बी-सीधी नाक से सटकर, पतले होठों पर झूलता हुआ सोने का मोटे तार का बुलाक—जैसे ओठों की ओट

देकर बचाने के लिये लटका दिया गया हो…… और हाथ भर का लम्बा दाव; मर्द उसके दो टुकड़े करके कुत्तों को खिला देने की धमकी देता दिखाई दे जाता था।

रामशरण की मुँदी पलकों के भीतर स्त्री का मुस्कराता हुआ चेहरा नाच रहा था और कान सुन रहे थे—"अब सो रहो पाहुने जी !" उसके शरीर पर नींद लाने के लिये फिरते उस स्त्री के हाथ उसकी नींद को कोसों दूर भगाये थे। थकावट, नींद और मन की वहशी गर्मी सिर दर्द बन रही थी। उसे अनुभव हो रहा था, उसके शरीर पर उतना ही जोर पड़ रहा है जितना स्कूल-कालेज में कसरत सीखने के दिन में पड़ता था। वह पीड़ा, भय और उत्तेजना भी अनुभव कर रहा था।

रामशरण को किसी ने ठेल कर जगा दिया। वही पहिचाना हुआ कोमल स्वर था— "उठो पाहुने जी……"

मर्द के कठोर कण्ठ ने उस बात को पूरा किया—"दिन चढ़ने को हो रहा है। पड़ोसी बैलों को घास डालने के लिये उठते होंगे। इस बदमाश को गांव से निकाल आऊं नहीं तो दाव से इसके दो टुकड़े कर खेत में डाल दूं कुत्तों के सामने……!"

स्त्री शहद और मक्खन चुपड़ी मक्का की एक बड़ी सी रोटी हथेली पर लिये थी—"पाहुने जी, दूर राह में पानी पीने के लिये इसे रख लो।"

रामशरण मर्द के आगे-आगे अंधेरे में जंगल की राह बढ़ता जा रहा था। रामशरण ठोकर खाता हुआ उसके पीछे लड़खड़ाता जा रहा था। समीप की एक पगडण्डी से उसने रामशरण को सड़क पर पहुँचा दिया और बगल में दबा दाव दिखा कर रुद्र मुद्रा और कठोर स्वर में धमकाया :—

"चला जा बदमाश यहाँ से। खबरदार, किसी से कहा कि घर में टिकाया था। मैं बड़ा जालिम आदमी हूँ।……बोटी-बोटी काट डालूंगा। आ गया" उसने एक घृणित गाली देकर कहा, "मेंहमान बनकर औरत चोरों के देश का बदमाश !"

मर्द तुरन्त लौट पड़ा।

रामशरण दम लेने के लिये सड़क पर बैठ गया। वह रात के विचित्र आतिथ्य की बात सोचता रहा।

भवानी माता की जय

प्रौढावस्था मे पति की मृत्यु हो जाने पर मोरियल मिल के बडे जमादार ठाकुर मितानसिंह का जीवन दो ही चीजो पर निर्भर हो गया था, एक उनकी पूजा की पोटली जिसमे भवानी माता की मूर्ति और पूजा की सामग्री थी और दूसरी, जीवित 'भवानी' उनकी एक मात्र बेटी।

बीस बरस पहले ठाकुर मितानसिंह ने संकट आने पर भवानी माता को पुकारा था। उस समय मोरियल मिल के बडे जमादार वृन्दा ठाकुर अपनी नौकरी पर ही गंगा सिधार गये थे। लाखों-करोडों रुपये की मालियत की मिल की जमादारी मजाक नही। साहब लोग तो मिलों को कागजों पर ही देखते हैं लेकिन मिलो मे चोरी से अगर एक-एक पेंच और एक-एक सूत भी जाने लगे तो कागजो पर सब जैसा का तैसा बने रहने पर भी मिल का कहीं पता भी न चले। इस सब की जिम्मेदारी रहती है, बडे जमादार पर। इसी से बडे जमादार का पद प्रायः पुश्तैनी होता है। सब दरबान, चौकीदार और जमादार बडे जमादार की जमानत पर ही मिल मे भरती होते हैं। बडे जमादार के ही चार्ज मे बन्दूकें भी रहती हैं। बडे साहब भी बड़े जमादार को जमादार साहब कहकर याद करते हैं। बडे जमादार, बड़े साहब और मैनेजर साहब के अलावा किसी को सलूट नही देते। दूसरे सब जमादार लोग बड़े जमादार को, मैनेजर और बडे साहब का सलूट देते है। जमादारों के क्वार्टरों मे बडे जमादार की खाट लगाने-उठाने, नल से पानी भरने, उनकी धोती कचार देने या रसोई के बर्तन मल देने के सब काम छोटे जमादार लोग कर देते हैं।

पुराने बडे जमादार वृन्दा ठाकुर के गंगा सिधारने के समय मिल मे बडे [illegible] जमादार की समस्या पेश हो गई थी। वृन्दा ठाकुर के

अपना कोई लड़का न था परन्तु रिश्ते का भतीजा हरनाम जमादारी की नौकरी पर मौजूद था। उसने बड़े जमादार की गद्दी का दावा बड़े साहब के सामने पेश किया। वृन्दा ठाकुर के खानदान और गाँव से चौदह आदमी मिल की नौकरी में थे। मितान ठाकुर के यहाँ के बारह आदमी थे। वृन्दा ठाकुर का भतीजा हरनाम मितान ठाकुर से उम्र में चौदह बरस छोटा था।

मितान ठाकुर ने बड़े साहब के सामने जमीन पर पगड़ी रखकर कह दिया--हुजूर की नौकरी में बाल सफेद हो गये। गुलाम की वफादारी, नमकहलाली और कारगुजारी सरकार के सामने है। सरकार के हुक्म से कितनी दफे बदमाशों से लोहा लिया है। सरकार से कुछ छिपा नहीं है। सरकार, लौंडे को सलूट नहीं दे सकता हूं, चाहे नौकरी और सिर दोनों चले जायं। क्वार्टर में लौट मितान ने माता भवानी की मूर्ति के चरणों में सिर रख दिया था।

बड़े साहब ने दोनों पक्षों के जमादारों का अमालनामा (हिस्ट्री शीट) मंगाकर देखा और फैसला दिया कि अब ठाकुर मितानसिंह बड़े जमादार होंगे। आइन्दा दोनों खानदानों से जिसकी वफादरी और नमकहलाली बढ़कर होगी, उसी खानदान का बूढ़ा बड़ा जमादार रहेगा।

जिस दिन मितान को बड़े जमादार की पगड़ी का सुनहरी झब्बा मिला उसके दो दिन बाद गांव से आये आदमी ने खबर दी कि मितान के छोटे भाई के यहाँ कन्या जन्मी है। मितान की ठाकुराइन ने एक लड़के और लड़की को जन्म दिया था। दोनों सन्तानें न रहीं और ठाकुराइन भी चल बसी थीं। मितान ने अपने से चौदह बरस छोटे भाई को ही पुत्र के स्थान पर समझ लिया था। जाने किस कर्म के अपराध से छोटे भाई के भी दो सन्तानें होकर गुजर जाने के बाद फिर कुछ न हुआ था। अब भवानी ने अपनी पूजा से प्रसन्न होकर स्वयम् ही उनके यहाँ जन्म लिया था। देवी के वरदान से प्राप्त कन्या का नाम रखा गया--भवानी।

भवानी अभी चार बरस की ही हुई थी कि गांव में इन्फ्लूएन्जा का बुखार फैला और मितान के छोटे भाई बहू समेत चल बसे। मितान लड़की को कानपुर ले आये। वह पालतू बन्दरिया की तरह नाऊ और उनके मातहत जमादारों के कंधों और सिर पर नाचती रहती। देखते-देखते सियानी होने लगी। लोगों की नजरों में भवानी भले ही सियानी हो रही थी परन्तु ठाकुर मितानसिंह के [illegible] वह वैसी ही 'भानो' बनी थी। समझ के लोगों ने सुझाया भी कि बेटी [illegible] घर बैठाना ठीक नहीं, पराया धन है। बेटी के तो केवल दान का ही

६०४०

पुत्र माँ-बाप का है परन्तु सिताल सुनकर भी न सुनते। उन्होंने वही किया जिसका मन में निश्चय किये बैठे थे।

सिताल ठाकुर ने विराम लेकर बीस गाँव छाने तब कहीं उन्हें अपने मन का वर भवानी के लिये मिला। यह था, भेरवा गाँव के निरंजन ठाकुर का छोटा लड़का। निरंजन ठाकुर तीन भाई थे। घर की कुल जमीन नौ बीघा थी। घर के सभी मर्द पल्टन में और दूसरी जगह नौकरी करते थे। निरंजन ठाकुर के पाँच बेटे थे। इस तरह सिताल ठाकुर की पसन्द का भवानी का वर भूरेसिंह केवल बारह बिसवा जमीन का उत्तराधिकारी था। भूरेसिंह गाँव छोड़कर मजदूरी की तलाश में कानपुर आ गया था और रांटे की मिल में पगार कर रहा था। भूरे को दामाद बना लेने के बाद ठाकुर सितालसिंह ने उसे मोरिसन मिल की दरबानी में भरती करा लिया और दामाद को बड़े साहब के सामने पेश कर कहा—"यह हुजूर के गुलाम का लड़का है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। सरकार का नमक मेरी हड्डियों में समाया है। मेरे बाद यही मेरा बेटा हुजूर का नमक हलाल करेगा।"

सिताल ठाकुर की पूजा से प्रसन्न माता भवानी का अवतार बेटी 'भवानी' उनके ही घर स्नेह के सिंहासन पर विराजे रही।

× × ×

ठाकुर सितालसिंह ने भागवत की कथा में सुना था कि कलिकाल में पाप बढ़कर जब कलियुग के चारों चरण पूरे हो जायेंगे तभी कलंकी अवतार होकर पाप का नाश होगा। सो यह समय उनकी आँखों के सामने ही आ रहा था। धर्म और परलोक तो जैसे मिट ही गये थे। पाप का डर किसी को न रहा। धर्म-कर्म सब उलट गये थे। पढ़े-लिखे कहलाने वाले लोग आकर मिल के फाटकों पर लेक्चर देते कि मालिक चोर है, वे नौकरों की, मजदूरों की कमाई चुराते हैं। मिलें मजदूरों की मेहनत से बनी हैं। वही असली मालिक हैं। मिल के मुनाफे में उनका हिस्सा होना चाहिये। उनकी नौकरी की गारण्टी और बुढ़ापे के गुजारे का इन्तजाम होना चाहिये।

मिल के मजदूर और नौकर कहने लगे कि मालिक हमें नौकरी से बर्खास्त नहीं कर सकता। मिल हमारी है। मिल को हम चलाते हैं। हमारे बिना मालिक मिल चलाकर दिखायें? आये दिन हड़ताल और फिसाद लगा ही रहता था। मजदूर तैश में आकर हमला कर सकते थे ऐसे समय। मिल के

दरबानों और जमादारों की नमकहलाली और वफादारी का ही भरोसा था ।

झगड़ा करना हो तो कारणों की क्या कमी हो सकती है । साल खतम होने को था । मैनेजर ने डेढ़-सौ आदमियों की बर्खास्तगी का नोटिस दे दिया था । मजदूरों की तरफ से एलान हुआ कि यह आदमी बर्खास्त नहीं होने चाहिये । इन आदमियों का तरक्की का हक आ गया है इसलिये उन्हें बर्खास्त करके, कम मजदूरी पर नये मजदूर रखे जायंगे । मिल वाले कई बार ऐसा कर चुके हैं । मिल मालिकों ने मजदूरों की इस बात की परवाह न की । दस दिन बाद हड़ताल होने का नोटिस दे दिया गया ।

मिल के भीतर मजदूरों को हड़ताल करने का उपदेश देने के लिये रोज ही पर्चे बंटते थे और सुबह-शाम मज़दूरों के नेता मिल के दरवाजे के बाहर हड़ताल करने का लेक्चर पाली (ड्यूटी) पर आने वाले और छुट्टी होने पर मिल से निकलने वाले मजदूरों को देते थे । मैनेजर साहब मिल में बटने वाले इन पर्चों से भन्ना गये थे । उन्होंने बड़े जमादार से जवाब तलब किया कि जब मिल में आते-जाते समय सब मजदूरों की तलाशी होती है तो यह पर्चे मिल में कैसे पहुंच जाते हैं ?

ठाकुर मितानसिंह स्वयं इस शरारत से परेशान थे : उन्होंने जमादारों को बुलाकर हुकुम सुनाया—"जिस जमादार की ड्यूटी में पर्चा भीतर जायगा, वह बर्खास्त किया जायगा ।"

उस दिन भी रात की पाली में मिल में पर्चे बंटे । ठाकुर मितानसिंह के सिर में खून चढ़ गया । उन्होंने कहा, मिल में ऐसे नमकहरामों की जरूरत नहीं है । पर्चे विजयसिंह और लालमन की ड्यूटी में, उनके दरवाजे से जाने वाले मजदूरों के पास पकड़े गये थे । ठाकुर मितानसिंह ने दोनों जमादारों की वर्दी उतरवा ली और उनका बोरिया-बिस्तर उठा कर उन्हें मिल के फाटक से बाहर कर देने का हुकुम कर दिया । बहुत दिन से उन्हें सन्देह था कि यह सब शरारत उनकी सफेद होती दाढ़ी में कालिख पोतने के लिये वृन्दा ठाकुर के भतीजे हरनाम के गिरोह की चाल है । वे लोग भूरे से जलते थे ।

ठाकुर मितानसिंह ने चरन जमादार को हुकुम देकर भूरे को मैनेजर साहब के सामने बुलवाया और नमक हराम जमादारों की तलाशी लेकर उनका बोरिया बिस्तर लदवाकर मिल से बाहर कर देने का उत्तरदायित्व भूरे पर सौंप दिया । मतलब था कि किसी किस्म की रियायत ऐसे बदमाशों के साथ न हो सके । ठाकुर यह भी कहना न भूले कि जब तक और मुनासिब

आदमी नही मिलते, भूरे और धरन उन जमादारो की ओर अपनी डबल ड्यूटी दे ।

भूरे हुकुम सुन कर खडा ही रह गया ।

"खड़े-खड़े क्या देखते हो जी ?" मैनेजर ने धमकाकर पूछा ।

"हाँ जाओ !" ठाकुर मितानसिंह ने भी अफसराना लहजे में मैनेजर साहब की ताइद की ।

भूरे खड़ा रहा और फिर मैनेजर साहब को प्रश्नात्मक ढग से अपनी ओर घूरते देखकर उसने कुछ हकलाते हुए कहा—"हुजूर, यह हम से नहीं होगा । हुजूर के जैसे ये नौकर, वैसे हम नौकर । हम किसी के पेट पर कैसे लात मारें हुजूर ?"

मैनेजर साहब तो चुप ही रह गये परन्तु मितान ठाकुर क्रोध से काँप उठे—"जवाब देता है बदजात !" आवेश में उनका गला रुध गया ।

मिल में नौकरो और जमादारों पर सकता सा छा गया । पन्द्रह मिनट भी न बीते थे कि कन्धे पर एक थैला और कम्बल रक्खे, काख मे जमादार की वर्दी दबाये भूरे क्वार्टरो की ओर से आता दिखाई दिया । उसके पीछे-पीछे घूंघट काढ़े भवानी चली आ रही थी ।

भूरे ने वर्दी बड़े जमादार के पाँव के सामने रख दी और बिना सकोच के बोला—"सरकार, तनख्वाह के लिये कब हाजिर होऊ ? कायदे से एक महीने की तनख्वाह का हकदार हू ।"

मितानसिंह को यों ही अपने आप को सम्भालना कठिन हो रहा था । भूरे की यह कानूनबाजी उनके क्रोध की ज्वाला पर घी पड़ने के समान हुई । वजनी गाली उनके मुह से निकल गई ।

"हट जा नजरों के सामने से नहीं तो अभी गोली मार दू गा ।"

ठाकुर सचमुच फाटक पर बन्दूक लिए खड़े सन्तरी से बन्दूक छीनने के लिए उस ओर को लपक गये । मैनेजर साहब, कई क्लर्कों और मजदूरों ने बुढ़ापे के आवेश से थर-थर कांपते उनके शरीर को थाम लिया । उन्हें फाटक से पड़ी बेंच पर बैठा दिया गया ।

भूरे चुपचाप फाटक से बाहर हो गया । भवानी अब तक बाबा की पीठ पीछे खड़ी थी । भूरे को फाटक से बाहर होते देखकर वह भी उसके पीछे चल दी । यह देख कर ठाकुर फिर उछल कर खड़े हो गये—"तू कहाँ जा रही है ?" नहीं तू नही, जायगी । ऐसे नमकहराम, बेधर्मी के साथ तू नहीं

जा सकती। तू आज से रॉड हो गई। लौट जा, नहीं तो आज जमीन खून से तर हो जायगी।"

भवानी घूंघट में सिर झुकाए खड़ी रह गई।

भूरे ने दो पल भवानी की ओर देखा और उसे आते न देख कर चल पड़ा।

मितानसिंह ने पागल की तरह बेटी का हाथ थाम लिया और उसे खींचते हुए अपने क्वार्टर की ओर ले गये।

मितानसिंह का चेहरा और आँखें सुर्ख हो रहे थे जैसे कोई गहरा नशा खा गये हों। रात को भी उन्होंने आराम के लिये वर्दी नहीं उतारी और बेत हाथ में लिये लगातार फाटक और मिल का चक्कर लगाते रहे। भोजन की बात वे भूल ही गये।

भवानी को जैसे और जिस जगह लाकर बाबा ने बैठा दिया था, वह उसी जगह वैसे ही निर्जीव पदार्थ की तरह पड़ी रही। बाबा भी क्वार्टर को न लौटे और वह भी उस स्थान से न हिली।

अब तक हड़ताल केवल धमकी ही जान पड़ती थी परन्तु तीन जमादारों भूरे, लालमन और विजयसिंह की मिल से बर्खास्तगी के सवाल पर हड़ताल हो ही गई। दूसरे ही दिन से मजदूर-सभा ने मोरियल मिल में जमादारों की नाजायज बर्खास्तगी के विरोध में हड़ताल की घोषणा कर दी।

मजदूर सभा के लोग मिल के फाटक के बाहर आकर लेक्चर देने लगे—"दुनियाँ भर के मेहनत करने वालों को इस घटना से शिक्षा लेनी चाहिये। मजदूर और मेहनत करने वाले लोग समाज की मशीन में चाहे जिस पुर्जे का काम करें, वे चाहे मजदूर बन कर कपड़ा बुनें या इंजन चलायें, चाहे बन्दूक लेकर सिपाही बनें या लाठी लेकर चौकीदारी करें वे सब एक हैं और पूंजीपति मालिक इस सामाजिक मशीन का रस चूस लेने वाला राक्षस है। मजदूर अपने सिपाही दरवान भाइयों पर होने वाले जुल्म का विरोध करके समाज को दिखा देना चाहते हैं कि सब शोषितों का हित एक है। मिलों में दरवानी, पुलिस और फौज में सिपाहीगिरी करने वाले लोगों को हम दिखा देना चाहते हैं कि समाज के दो भाग हैं—एक लुटेरे पूंजीपतियों और मालिकों का और दूसरा मेहनत करने वालों का। पूंजीपति राक्षस अपने इन्तजाम की कुल्हाड़ी में जिस लकड़ी का बेंटा डालकर समाज को काटता है, उस बेंटे की लकड़ी समाज के ही वृक्ष का भाग है, पूंजीपति के शरीर का नहीं। जब तक हमारे तीनों दरवान भाई, जिन्होंने मजदूरों पर नाजायज जुल्म करने से इनकार

किया है, बहाल न कर दिये जावेंगे, सेंट्रियल मिल की हड़ताल बन्द न होगी चाहे हजारों मजदूर भूखों मर जांय।' ...... आदि आदि।

हड़ताल के जवाब में मजदूरों की इस ताकत के जवाब में, मिल ने स्वयं ही मिल बन्द (लाक आउट) करने का एलान कर दिया।

मिल का फाटक बन्द था और ठाकुर निहालसिंह स्वयं वहीं पहले बेंच पर बैठे थे। उन्हें अब किसी पर विश्वास नहीं रहा था। वे निश्चय करके बैठे थे, यदि भीड़ मिल पर चढ़ दौड़ेगी तो वे अकेले ही बन्दूक लेकर सामना करेंगे चाहे हजार आदमी का खून हो जाय। उनकी लाश पर पांव रख कर ही कोई मिल में कदम रख सकेगा।

मैनेजर साहब दफ्तर में बैठे घबरा रहे थे कि इस का असर दूसरे मजदूरों और अहलकारों पर क्या होगा ?

शहर में खबर आयी कि मजदूरों ने एक बड़ा भारी जुलूस निकाला है। जुलूस में सब मिलों के मजदूर शामिल थे और तीनों बर्खास्त वर्करों को गले में हार पहनाकर जुलूस के आगे-आगे शहर में घुमाया जा रहा है। दूसरी मिलों के मजदूर भी सहानुभूति में हड़ताल की बातें कर रहे थे।

दूसरी मिलों से लगातार फोन आ रहे थे कि सेंट्रियल मिल में क्या फैसला हुआ ? कुछ फैसला होना चाहिये नहीं तो बखेड़ा बहुत बढ़ जाने की आशंका है।

हरनाम के गांव का सिपाही सब को सुनाकर कह रहा था—"हम तो पहले ही जानते थे, भूरे मजूर सभा के बदमाशों का आदमी था। लोहा मिल में काम करता था तब भी सभा में जाता था। उसी ने विजय और लालमन को बहकाया। बड़े जमादार के डर से हम बोले नहीं कि हमारी कौन सुनेगा।"

× ^ ×

कोतवाल साहब ने मैनेजर साहब को फोन किया कि मजदूर सभा के लोग भूरे को लेकर कोतवाली में रपट लिखाने आये हैं कि मिल वालों ने भूरे जमादार की औरत भवानी को जबरन मिल में रोक रखा है। कहिये, क्या किया जाय ?

मैनेजर साहब फोन पर हंस दिये—"अरे कोतवाल साहब, बेकार मजाक करेंगे ? क्या दुनिया उजड़ गई है कि मिल वाले अब मजदूरनियों पर नीयत गिरायेंगे।......आपने आदमी नहीं भेजा। आपकी चीज तो रखी है।'... कह दीजिये न भूरे से कि औरत अपने बाप के घर है, जाती है तो ले जाय।

ठाकुर मितानसिंह ने यह धमकी सुनी और लाल आंखों से मजदूर पचों की ओर देखकर क्रोध में जबड़े पीस लिये ।

मजदूर पच बाहर चले गये । मजदूरों के एक हजार गलों से 'जमादार की औरत रिहा करो !' 'इन्कलाब जिन्दाबाद !' के नारे गूँजने लगे ।

मैनेजर साहब ने ठाकुर मितानसिंह को समझाया—"बिटिया को खामु-ख्वाह रोके हो ? झगड़े से क्या फायदा ?"...... वह अपने मर्द के पास जाना चाहती है तो जाने दो ।"

मितान ठाकुर ने सिर हिला दिया । आवेश से रुंधे गले से कठिनता से शब्द निकले—"हुजूर, ऐसा हुकुम न दीजिये । यह इज्जत का सवाल है । मालिकों की और हमारी इज्जत का मामला है । नमकहराम मर्द के साथ हमारी बेटी नहीं जायगी । वह राड हो गई ।"

मिल के फाटक का शोर भीतर क्वार्टरों तक भी पहुंचा । जमादारों के क्वार्टरों में सनसनी फैल गई कि भूरे भीड़ लेकर भवानी को लेने आया है और मिल पर हमला हो रहा है । पुलिस बंदूकें लेकर आई है । दूसरी स्त्रियों ने भी भवानी को बताया ।

भवानी उठी और लपकती हुई फाटक की ओर चल दी । ज्यों-ज्यों वह फाटक के समीप पहुंच रही थी हल्ला बढ़ता जा रहा था । गोली चलने की आवाज सुनाई दी । भवानी फाटक की ओर दौड़ पड़ी ।

पुलिस के कुछ सिपाही फाटक के बाहर थे और कुछ सीखचेदार फाटक के भीतर थे । भीड़ को फाटक से पीछे हट जाने के लिये कई बार चेतावनी दी गई परन्तु कुछ असर न हुआ था । दारोगा ने सिपाहियों को हवा में गोली चला कर भीड़ को धमकाने के लिये कहा । गोली की आवाज सुन कर भूरे, लच्छमन और दूसरे मजदूर-पंच सीने तानकर आगे बढ़ आये । फाटक की ओर चली आती भवानी ने यह देखा । वह और भी तेजी से फाटक की ओर लपकी । पुलिस ने फिर एक बार हवा में गोली चलाई परन्तु भीड़ हटी नहीं ।

ठाकुर मितानसिंह बन्द फाटक के सींखचों से यह सब देख रहे थे । पुलिस की कायरता उन्हें असह्य हो रही थी ।

फाटक के सीखचों में से भवानी को अपनी ओर बढ़ते देखा भीड़ फाटक पर पिल पड़ी । भवानी सींखचों के इस पार थी और दूसरी ओर से भीड़ फाटक को अपने बोझ से हिलाये दे रही थी । फाटक के लोहे के छड़ बासों की तरह कांप-कांप कर झनझना रहे थे बाहर भीड़ में पुलिस का कहीं

गली में चलाता था। [illegible] फिर हो गया भागना था।

अचानक [illegible] दारोगा ने मजदूरों के [illegible] से सिपाहियों को और पर गोली चलाने का हुक्म दिया। फ़ायर होने लगे। भवानी [illegible] पुलिस के सामने से [illegible] की ओर बढ़ गयी।

भवानी पुलिस और [illegible] के साथ [illegible] से आगे बढ़ गयी। और पर चलाई गई गोली उसकी गोद में लगी और वह गिर पड़ी।

चार हजार से अधिक मजदूर मिल के बाहर सड़क पर जमे हुए थे। उनका प्रण था कि वे भवानी का शव लिये बिना मिल के फाटक से न हटेंगे। और वे निरन्तर नारे लगा रहे थे—"इनकलाब जिन्दाबाद ! भवानी की लाश लेंगे ! माता भवानी की जय ! खून का बदला खून से लेंगे ! पूंजीवादियों के टुकड़खोरों का नाश हो ! मालिकों के कुत्तों का नाश हो ! मजदूर लेंगे स्वराज ! इन्कलाब जिन्दाबाद ! भवानी माता की जय !"

पुलिस भवानी की लाश के बारे में कानूनी कार्रवाई कर रही थी। ठाकुर मितानसिंह को जबरदस्ती पकड़ कर उनके क्वार्टर में खाट पर लिटा दिया गया था परन्तु वे फिर उठ आये थे। उनकी आँखें लाल और सूखी थीं। पपड़ाये जबड़े निरन्तर चल रहे थे और मन पर लहरियों की तरह उठ आई नसें खिचखिच कर रह जाती थीं, जैसे कुछ निगल रहे हों।

दारोगा ने फोन पर कलक्टर से बात की और भवानी का शव मजदूरों को सौंप दिया गया।

मिल के सामने सड़क पर ही बहुत बड़ा विमान बहुत तैयारी से बनाया गया। फूलों और लाल झंडियों से सजे विमान को लेकर जुलूस चला। घड़ियालों और शंखों की गूंज के साथ 'भवानी माता की जय और इन्कलाब जिन्दाबाद !' के नारे और भी जोर से लगने लगे। जुलूस के पीछे ठाकुर मितानसिंह भी लड़खड़ाते चले आ रहे थे। पूंजीवाद के टुकड़ाखोरों और मालिकों के नाश के नारे भी लगातार लग रहे थे।

गंगा जी के किनारे बहुत बड़ी चिता पर फूलों और लाल झंडियों से सजा विमान रख दिया गया। मजदूर-पंच लेक्चर दे रहे थे—

"जिस धर्म का पालन बहिन भवानी ने किया है वही हम सब हिन्दुस्तानियों का धर्म है। बहिन भवानी ने हमें सिखाया है कि हम किसी जुल्म के सामने सिर न झुकायें, चाहे प्राण देना पड़े। साथी भूरेसिंह ने धर्म को पहचाना कि उसका कर्तव्य उस मेहनत करनेवाली श्रेणी की सहायता करना

है जिस श्रेणी में उसके बाप-दादा थे जिस श्रेणी में देश के करोड़ों भाई हैं। अपनी रोटी के लिये अपने करोड़ों भाइयों के पेट पर लात मारना उसने स्वीकार न किया। उसने कुत्ते को बाँध रखने वाली मालिक की गुलामी की जंजीर, रोटी के टुकड़े की जंजीर तोड़ दी और धर्म और न्याय की रक्षा के लिये अपने भाइयों के साथ जा खड़ा हुआ। उसने भी बढ़कर अत्याचार न सहने के धर्म का पालन किया भवानी बहिन ने इसलिये हम सब शोषित भाई भवानी को 'माता' कह कर प्रणाम करते हैं। सब बोलो—भवानी माता की जय ?"

मजदूर-संघ की आँखों से बहते आँसू धूप में चमक रहे थे। वैसी ही आँसुओं की धाराएँ भीड़ के हजारों आदमियों के चेहरों पर चमक रही थी। फिर नारों की आकाश-भेदी गूँज में भूरेसिंह के हाथ से चिता में आग दिलवा दी गयी।

भीड़ के पीछे से आवाजें सुनाई दीं—"मालिकों के कुत्तों का नाश हो, पूँजीपतियों के टुकड़खोरों का नाश हो।"

घूम कर लोगों ने देखा बड़े जमादार की वर्दी पहने ठाकुर मितानसिंह चिता की ओर बढ़ रहे थे। मालिकों के कुत्तों के नाश के नारे और भी ऊँचे लगने लगे।

पंचों ने आगे बढ़ कर भीड़ को चुप कराया। मितानसिंह चुपचाप चिता के समीप पहुँचे। हाथ जोड़ कर उन्होंने तीन बार चिता की प्रदक्षिणा की और फिर पागलों की तरह चिता की ओर लपके। भूरेसिंह और दूसरे मजदूरों ने दौड़ कर उन्हें पकड़ लिया। मितानसिंह सिर पीट कर जोर से रो दिये।

नारे सब बन्द हो गये। एक सन्नाटा छा गया और भीड़ फिर से रोने लगी। मितानसिंह चिता पर चढ़ जाने की जिद कर रहे थे और लोग उन्हें रोक कर ढाढ़स दे रहे थे। आखिर उन्होंने अपनी झब्बेदार पगड़ी उतार कर चिता पर फेंक दी।

"इन्कलाब जिन्दाबाद!" के नारों से फिर आकाश गूँज उठा।

मितानसिंह जमादारी की सब वर्दी उतार-उतार कर चिता पर फेंकने लगे। भीड़ में से किसी आदमी का दिया अंगोछा उनकी कमर पर लिपटा था।

अब और ही नारे लग रहे थे—"भवानी माता की जय। मितानसिंह की जय! पूँजीवाद का नाश हो! लड़ कर लेंगे स्वराज! इन्कलाब जिन्दाबाद!"

मितानसिंह जन समूह में घिर कर ऐसे रो रहे थे जैसे बरसों के बिछोड़े के बाद मिलने पर सम्बन्धियों के दिल भर आते हैं।

३

शिव पार्वती

मूर्तिकार अमेघ ने उत्कल देश में आकर चोलवंश के महाप्रतापी, धर्मरक्षक, महाराज भद्रमहि के दरबार में आश्रय लिया। महाराज की इच्छा से अमेघ ने महाराज के इष्टदेव, देवाधिदेव महादेव की एक मूर्ति गढ़ कर तैयार की। कठोर पत्थर की शिलाओं पर हथौड़ा और छैनी चलाकर अमेघ ने अपने देवता के प्रति श्रद्धा के भावों को अत्यन्त सजीव रूप में प्रकट किया। पत्थर के बने उस मूर्ति के अंग जड़ और स्थिर होकर भी भावों की भाषा से मुखरित थे।

धर्मरक्षक, महाप्रतापी महाराज भद्रमहि मूर्तिकार अमेघ की कला के चमत्कार से अत्यन्त प्रभावित हुए। सौन्दर्य और कला के इस सन्तोष से महाराज के मन में सौन्दर्य और कला के लिये और भी अधिक रुचि उत्पन्न हुई। अमेघ को राजकीय-तक्षक का पद दिया गया। महाराज ने आंध्र, तामिल, द्रविड़ आदि देशों की पत्थर की खानों से बहुमूल्य पत्थर की शिलायें मंगवा कर पर्वत खड़े कर दिये और अमेघ को आज्ञा दी—"भद्र अमेघ, अपने हाथ से बनाई हुई, देवमूर्ति के अनुरूप ही एक विशाल, अनुपम मन्दिर का निर्माण करो। इस मन्दिर की भित्तियों पर देवताओं के जीवन की कथायें चित्रों की भाषा में अँकित हों।"

अमेघ के लिये राजकोष से सुखमय जीवन की व्यवस्था कर दी गयी थी। उसे महाराज का अन्तरंग और अनुगृहीत होने का सम्मान प्राप्त था। राज-पुरोहितों और राज-पण्डितों की भांति वह राजसभा में उपस्थित होता था। महाराज ने उसे रथ का आदर भी प्रदान किया। उसका जीवन सन्तुष्ट था।

अमेघ जीवन की सब चिन्ताओं से मुक्त होकर अपनी कला के निखार संतोष पाता था। कला उसके लिये जीविका का साधन नहीं, जीवन की

साधना बन गयी थी। उस साधना की तृप्ति से वह संसार से निरपेक्ष हो गया था। अपनी कला साधना में किसी प्रकार का भी विघ्न या व्यतिरेक उसे स्वीकार न था।

अमेघ का यौवन बीत गया परन्तु विवाह और गृहस्थ का आयोजन करने का ध्यान उसे न आया। उसके जीवन के उद्वेग, आवेग और आवेश कला के रूप में प्रकट होकर चरितार्थ होते रहे।

हित-चिन्तकों और मित्रों ने सुझाया, ऐसी अपूर्व कला की उचित उत्तराधिकारी स्वयं कलाकार की अपनी सन्तान ही हो सकती है। अमेघ ने अपनी कला के उत्तराधिकारी पुत्र की इच्छा से प्रौढ़ अवस्था में विवाह किया। कुछ समय पश्चात प्रौढ़ अमेघ की पत्नी ने एक सन्तान प्रसव कर पति के प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया और इसके साथ ही वह इस संसार को छोड़कर चली गयी। दैवेच्छा से वह सन्तान कन्या हुई। अमेघ ने इसे दैव की इच्छा समझा और संतोष कर लिया।

अपनी प्रौढ़ावस्था की मातृहीन लाडली सन्तान को अमेघ प्रायः अपने समीप ही रखता था। इस कन्या का समीप रहना प्रौढ़ के निर्बल शरीर को शक्ति देता रहता था।

तुतलाना आरम्भ करते ही अमेघ की कन्या प्रायः कला की साधना में रत पिता की गोद में आ बैठती। पिता की हथौड़ी और छैनी थाम लेती; पत्थर के टुकड़ों, उनके रूप-रंग, उपयोग और भाव के सम्बन्ध में अनेक बाल-सुलभ प्रश्न पूछने लगती।

अमेघ मुस्कराकर बाल-बुद्धि के योग्य उत्तर देने की चेष्टा करता और फिर यह भूल कर कि श्रोता केवल अबोध बालिका है, वृद्ध कलाकार कला के गूढ़ तत्वों की विवेचना करने लगता।

बालिका मेधा आश्चर्य से फैले नेत्रों से दाढ़ी-मूँछ की संधि में छिपे पिता के होठों से निकलते शब्दों को सुनती रहती और फिर कह देती—"बाबा, हम भी मूर्ति गढ़ेंगे !"

अमेघ बालिका को तक्षण-कला सिखाने लगता।

जब मेधा ने किशोरावस्था को पार किया, वह बड़े मूर्तियां गढ़ चुकी थी। पारखी दर्शक उन मूर्तियों की प्रसंसा करते और अमेघ के प्रति सहानुभूति से कहते —"यदि दैव ने कलाकार की पुत्री को पुरुष शरीर दिया होता, कलाकार के वंश का यश अमर हो जाता।"

स्तुति के रूप में अपनी यह निन्दा सुनकर मेघा भोले और उदास नेत्रों से पिता की ओर देखती।

वृद्ध पुत्री के सिर पर हाथ रखकर आंखें मूंद लेता।

एक दिन आँसुओं से छलके अपने विशाल नेत्र पिता की ओर उठाकर मेघा ने प्रश्न किया—"बाबा, क्या कन्या से कला की परम्परा की रक्षा नहीं हो सकती ?"

अमेघ ने बेटी का सिर अपने हृदय पर रखकर सान्त्वना दी—"क्यों नहीं बेटी, कला की देवी सरस्वती स्वयं नारी हैं।"

अमेघ के अंग शिथिल हो गये थे और रोग से वह और भी दुर्बल हो गया था परन्तु पत्थर के खण्ड पर छैनी और हथौड़ों का आघात सुने बिना उसे कल न पड़ती थी, उसे संसार सूना-सूना लगता था। वह मसनद का सहारा लिये लेटा रहता। समीप ही भूमि पर शिला का टुकड़ा रखकर मेघा पिता के बताये अनुसार मूर्ति गढ़ा करती।

ऐसे ही बीतते दिनों में एक दिन अमेघ के लिये इस संसार से चल देने का भी समय आगया। मेघा अपने पिता के वियोग में बहुत कलपी और फिर एक विशाल शिलाखण्ड लेकर उसने पिता की मूर्ति गढ़ना आरम्भ कर दिया। जब पिता की स्मृति बहुत तीखी हो जाती, मेघा छैनी-हथौड़ी एक ओर छोड़ कर मूर्ति के कंधों पर सिर रखकर उसे आँसुओं से स्नान कराने लगती।

× × ×

वृद्धावस्था आ जाने पर धर्मरक्षक, महाप्रतापी महाराज भद्रमहि की इच्छा हुई कि उनकी धर्म-कीर्ति के केतु, संसार प्रसिद्ध देवमन्दिर के आँगन में उनकी भक्ति-भावना की स्मृति के लिये, स्वयं उनकी मूर्ति भक्त के रूप में बन जाये। एक उपयुक्त मूर्तिकार की खोज में उन्होंने दूर-दूर देशों में दूत भेजे।

वैशाख बीत रहा था। वसंत ऋतु की उमंगों का स्थान ग्रीष्म की प्रखरता ले रही थी। वृक्षों की फुनगियों पर कोमल पत्ते और फूलों के गुच्छे कुम्हलाने लगे थे। मेघा बार-बार शरीर का स्वेद पोंछकर वायु के लिये गवाक्ष के सम्मुख जा खड़ी होती। ऐसे ही समय मेघा ने व्यजन लेकर आ गयी दासी के मुख से सुना कि उसके पुण्यकीर्ति पिता के बनाये मन्दिर में महाराज की गढ़ने के लिये नागदेश से एक यशस्वी युवक कलाकार तक्षक आ गया यह युवक निरन्तर शिलाखण्ड पर छैनी चला रहा है।

कारा की मूर्ति देव मन्दिर मे किसी दूसरे कलाकार के के समाचार से मेघा के मन मे ईर्षा हुई। फिर उसे यशस्वी देखने का कौतूहल भी जागा। इन दोनों ही भावों का लेकर अपनी छैनी और हथौड़ी लेकर पिता की मूर्ति गढ़ने लग करती। गरमी और श्रम के कारण माथे से बह चलने ने के लिये जब हाथ एक बार मूर्ति से हट जाते तो मन गा। हाथ बहुत समय तक ठिठके रह जाते। मेघा सोचने ढ, अनुभवी कलाकार मेरे पिता के आसन पर एक युवक है? ... उसका क्या ज्ञान और क्या क्षमता होगी? इस प्ताह, पखवाड़े, ग्रीष्म के दो मास बीत गये।

: भीगी मेघ छाई दोपहर में मेघा अपने पिता की मूर्ति गढ़ने चेष्टा कर रही थी परन्तु मेघों के मन्द गर्जन और झरोखे र के झोंके उसका ध्यान मूर्ति से उड़ा ले जाते थे। नित्य और नित्य का चिन्तन उस परिस्थिति मे मन को उचाट । था। मेघा कल्पना को वश में कर पिता का चेहरा याद ती परन्तु कल्पना मे दिखाई देने लगता—मन्दिर मे पिता कुशासन और उस पर बैठा हुआ कोई कलाकार—जिसका र अस्पष्ट था। वह कौन है, वह यहाँ कैसे आन बैठा? । होने लगता और फिर अपनी कल्पना के समान ही वायु घों की ही भांति उसे अपना शरीर भी अवश होता जान : विकलता से ऐंठते शरीर का बोझ पिता की अपूर्ण मूर्ति उसके विकल अंग कठोर पत्थर का आलिंगन कर लेते। मे स्थिर और कठोर आधार की आवश्यकता थी। वह उसा-ास लेने लगती परन्तु पत्थर की अविचल मूर्ति उसे आश्रय पाती।

। को सहसा छोड़कर अपनी दासी को पुकारा —"......रथ । के मन्दिर मे वसती महाराज की मूर्ति के दर्शन के लिये

पूर्व ही रथ से उतर गयी। उसने नागरिक वेश में मन्दिर के आंगन में प्रवेश किया। उसने दालान को देखकर के दायीं ओर के विशाल कक्ष में युवक कला-कार मूर्ति गढ़ रहा है। उसी ओर से पत्थर पर आघात करने की आवाज भी सुनाई दे रही थी। वह दबे पाँव उसी ओर चली गयी।

मेघा अनेक क्षण तक कक्ष के द्वार पर खड़ी देखती रही। एक सुडौल शरीर युवा, मनुष्य के आकार के एक पत्थर के खण्ड के सामने खड़ा, उसके भाग से उस पर छेनियाँ चला रहा था। उस युवा के सहायक अधूरी मूर्ति के निचले भाग में छेनी चलाने के काम में लगे थे।

मेघा ने देखा—युवक का मन कला में नहीं था। कभी वह दो हाथ छेनि-यार से चलाता है और मूर्ति की ओर दृष्टि किये कुछ गुनगुनाने लगता। फिर युवक की दृष्टि दूसरी ओर भटक जाती। कलाकार ने कंधों पर फैले अपने काले-चिकने केशों को छिटका कर, अपने हथियार समीप खड़े दास को थमा दिये। वह मूर्ति को छोड़कर चल दिया।

कला के प्रति ऐसी उदासीनता मेघा को अच्छी न लगी। वह द्वार से लौटना ही चाहती थी कि कलाकार उसी की ओर घूम गया। मेघा से उसकी आँखें चार हो गयीं। कलाकार क्षण भर ठिठका और फिर मेघा की ओर आने लगा। मेघा विनय से खड़ी रही।

युवक कलाकार कक्ष के द्वार पर आगया। उसने मेघा का प्रणाम विनय से स्वीकार कर प्रश्न किया—"भद्रे क्या देवालय की देवदासी हैं अथवा''' ?"

मेघा ने उत्तर दिया—"आर्य, मैं इस मन्दिर के निर्माता, राजकीय तक्षक स्वर्गीय अमेघ की कन्या मेघा हूं। कला के प्रति कौतुहल के कारण महाराज की बनती मूर्ति देखने चली आयी परन्तु आर्य, कला का यह अनमना ढंग तो पहले कभी नहीं देखा।"

युवक तक्षक ने मेघा को सिर से पांव तक देखा और फिर एक दीर्घश्वास लेकर कक्ष के मध्य में खड़ी अधूरी मूर्ति की ओर देखने लगा।

मेघा ने अनुभव किया, उससे अविवेक और अविनय का अपराध हुआ है। अपनी बात सम्भालने के लिये उसने फिर कहा—"आर्य विशेष विवेक से महाराज की मूर्ति निर्माण कर रहे हैं, इसी कारण चिन्तन अधिक और काम कम हो पाता है।"

"नहीं भद्रे, पहली बात ही ठीक थी। जो कला हृदय से नहीं उठती वह [illegible], समय-साध्य और निर्जीव होती है। विश्रुत कलाकार की कन्या

कला का मर्म जानती है।" कलाकार ने विवशता के स्वर में उत्तर दिया।

"आर्य सत्य कहते हैं।" मेघा ने समर्थन किया।

युवक तक्षक के प्रति मेघा के मन की कटुता मिट गयी। उसने लौटने के लिये तक्षक की ओर देखा। तक्षक ध्यान से उसकी ओर देख रहा था। उसकी दृष्टि में क्रोध और विरोध नहीं था फिर भी मेघा की चेतना ने चाहा, जैसे वह सिमिट जाय।

उस सन्ध्या से मेघा एक चपल विकलता अनुभव करने लगी। अपना शरीर उसे बोझल सा जान पड़ने लगा। सोचती, इस शरीर को उठाकर कहाँ रख दे? कल्पना बार-बार राजमन्दिर के आँगन में पहुँच जाती। कानों में पत्थर पर छैनी चलने की मधुर खनखनाहट्‌ सुनाई देने लगती और कलाकार की विवशता की स्मृति से मन सहानुभूति से दुखी होने लगता।

मेघा पिता की अपूर्ण मूर्ति को हाथ न लगा सकती। अपने बोझल शरीर में मसनद को दबाये वह आकाश में उमड़ते मेघों से मूर्तियों का बनना बिगड़ना देखती रहती और सोचती "" "नीचे की ओर सिमटता हुआ बादल का टुकड़ा कमर का रूप ले रहा है। ऊपर की ओर फैले हुए वे कंधे हैं, यहाँ एक टुकड़ा जुड़ जाने से वह भुजा नृत्य की मुद्रा का रूप ले लेगी या हाथ में हथौड़ा थामे कलाकार की ""। अनेक बार इच्छा हुई कि दासी को पुकार कर राज मन्दिर जाने के लिये रथ तैयार कराने को कह दे परन्तु संकोच ओंठों पर आये शब्दों को रोक लेता।

सातवें दिन मेघा ने मध्याह्न से पूर्व ही दासी रूपा को राजमन्दिर के लिये रथ तैयार कराने की आज्ञा दे दी। वह अपने कक्ष से मुख्य द्वार की ओर आ रही थी कि शीघ्रता से कदम उठाती चली आयी दासी ने समाचार दिया-- "राजकीय मन्दिर के तक्षक आर्य विशाख गृह-द्वार पर कुमारी के दर्शन के लिये प्रस्तुत हैं।"

मेघा ने सुना और अपने को वश में रखने के लिये एक दीर्घ श्वास लेकर धुकधुक करते हृदय पर हाथ रखकर पूछा--"क्या?"

जब तक दासी ने अपना संदेश दोहराया, मेघा अपने आपको प्रायः वश में कर चुकी थी। उसने कक्ष में बैठने के स्थान की ओर जाते हुए दासी को आज्ञा दी--"आर्य पधारें!"

तक्षक विशाख ने कक्ष में आकर कुमारी को बाहर जाने के वेश में देखा। उसने विनय से कुमारी के आयोजन में विघ्न डालने के लिये क्षमा मांगी।

मेघा ने अतिथि के सामने अर्घ्य-पात्र में पान और सुगन्ध उपस्थित कर उत्तर दिया--"आर्य ने दासी के आयोजन में विघ्न नहीं डाला केवल उसे सहायता दी है।" वह कुछ ठिठकी और फिर कह दिया, "दासी आर्य की कला का दर्शन करने के लिये राजकीय मन्दिर की ओर ही जा रही थी।"

"परन्तु भद्रे, विशाख की कला तो पदार्थ का अवलम्ब न पा सकने के कारण व्यर्थ हो रही है।" विशाख मेघा के मुख पर नेत्र लगाये बोला, "विशाख का मन अपने संतोष के लिये एक मूर्ति का तक्षण करने के लिये व्याकुल है।"

"उचित कहते हैं आर्य !" मेघा ने समर्थन किया।

"उसके लिये भद्रे की कृपा की आवश्यकता है।" विशाख ने कहा।

"दासी सेवा के लिये प्रस्तुत है आर्य ! यह दासी का सौभाग्य है कि कला की सेवा का अवसर पाये।" मेघा ने विनय से ग्रीवा झुकाली।

विशाख ने भद्रे को जिस रूप में देखा है, उसकी कल्पना की है, भद्रे की आकृति को लेकर वह उस भाव को पाषाण में रूप देना चाहता है। इसके लिये प्रत्येक प्रातःकाल विशाख कुमारी के दर्शन करना चाहता है।" विशाख ने अनुमति चाही।

मेघा के मुख पर गहरी लाली छा गयी और माथे पर हल्के स्वेद बिंदु छलक आये। उसकी ग्रीवा अधिक झुक गयी। स्वेद से पसीजती अपनी हथेलियों को दबाकर मेघा ने उत्तर दिया--"दासी तो इस योग्य नहीं है परन्तु ......"

मेघा के नेत्र फिर झुक गये। वह नेत्र झुकाये ही बोली--"दासी अपने आयुध लेकर इसी प्रयोजन से मन्दिर जा रही थी कि कला की सृष्टि के आवेश से क्षुब्ध कलाकर के सामर्थ्य को मूर्ति का रूप दे सके। दासी के जीवन में तक्षण के संतोष के अतिरिक्त और कुछ नहीं है आर्य !"

× × ×

राजकीय तक्षक विशाख और कलाकार अमेव की पुत्री प्रति प्रातःकाल स्नान के पश्चात् देवता की मूर्ति के सन्मुख उपस्थित होते और एक घड़ी तक एक दूसरे को निहारते। मनोयोग पूर्वक इस दर्शन का प्रयोजन तक्षण के लिये एक दूसरे की आकृति को मनस्थ करना होता था। विदाई का क्षण उन दोनों के लिये अत्यन्त दुखद होता परन्तु वे आत्मनिग्रह कर, नेत्र झुकाये

विदा हो जाते । इसके पश्चात मन्दिर के दायें और बायें कक्षों में दिन भर और आधी रात बीते तक पत्थर पर छेनी चलने का शब्द सुनाई देता रहता । विशाख और मेधा अलग-अलग अपनी-अपनी मूर्ति गढ़ने में लगे रहते । तथागत के आचार के अनुसार वे एक-दूसरे की साधना में बाधक न होते ।

इसी प्रकार पाँच पखवाड़े बीत गये । सन्ध्या समय मेधा को दीप जलाने की आवश्यकता न थी । वह मूर्ति समाप्त कर चुकी थी । कुछ काल से वह उसे केवल सब ओर से देखकर अपना सतोष कर रही थी । माथे का स्वेद आँचल से पोंछते हुए उसने आंगन की मुक्त वायु में आकर देखा—विशाख भी गर्दन झुकाये, मौन, मन्दिर के आंगन में इधर-उधर टहल रहा था ।

मेधा के पदों की आहट पाकर विशाख ने आँख उठा कर मेधा की ओर देखा और बोला—"भद्रे, मैं अपनी मूर्ति समाप्त कर चुका हूँ ।"

"आर्य, दासी भी कार्य समाप्त कर चुकी है, जैसा भी बना हो ।" मेधा ने उत्तर दिया ।

विशाख और मेधा ने परस्पर निश्चय किया; रात्रि के पहले पहर में, देव-पूजा समाप्त हो जाने पर दोनों ने अपनी-अपनी बनाई मूर्ति दूसरे को दिखाने के लिये सेवकों से उठवा कर देवता के सिंहासन के सम्मुख उपस्थित कर दी ।

विशाख बहुत समय तक अपलक मेधा की बनाई मूर्ति को और मेधा विशाख की बनाई मूर्ति को अपलक निहारती रही ।

विशाख ने अपनी गढ़ी मूर्ति की ओर संकेत कर, द्रवित होकर बहने के लिये तत्पर पुरुषार्थ से रुधे कण्ठ सेकहा—"हे नारी रूपा देवी, आश्रय देने के लिये समर्थ तुम्हारे इसी रूप को पाने से पुरुष तुम्हारे लिये साधना करता है ।"

मेधा मौन रही परन्तु उसके अधमुंदे नेत्र अपनी मूर्ति की ओर उठ गये । कम्पित स्वर से उसने उत्तर दिया—"आर्य, तुम्हारे इसी सृजन समर्थ रूप को नारी आश्रय के लिये पुकारती है ।"

× × ×

अगले दिन राजकीय मन्दिर के वृद्ध, पुण्यात्मा, तपस्वी पुजारी ने सूर्योदय से पूर्व ही धर्मरक्षक महाप्रतापी, महाराज भद्रसिंह के राजप्रासाद से न्याय और धर्म की रक्षा के लिये दुहाई दी ।

प्रधान पुजारी के आगमन का समाचार पाकर वृद्ध महाराज पलंग से उठ, सुन्दरी युवति दासियों के कंधों का आश्रय लिये, रनिवास की ड्योढ़ी पर

चले आये। महाराज के नेत्र अभी निद्रा के शेष से गुलाबी थे।

प्रधान पुजारी ने दुहाई दी—"धर्मरक्षक, प्रजापालक महाराज के राज्य की भूमि पाप से अपवित्र हो गयी। उत्तर देश से आये युवक तक्षक और मृत तक्षक अमेघ की पुत्री ने देवता के सिंहासन के सम्मुख पापाचार कर राजकीय मन्दिर को अपवित्र कर दिया। .. .."

महाराज के नींद से गुलाबी नेत्र लाल हो गये और युवा सुन्दरी दासियों के कन्धों पर रखे उनके हाथ क्रोध से काँप उठे। उन्होंने आज्ञा दी—"ऐसे पातकियों को मन्दिर के द्वार पर हाथी के पांव तले कुचलवा कर प्राण-दण्ड दिया जाये।"

×   ×   ×

राज मन्दिर को होम और मन्त्र-पाठ से पवित्र किया गया। प्रधान पुजारी ने तक्षक विशाख और मेघा की मूर्तियों को उठवा कर मन्दिर के द्वार के सम्मुख उसी स्थान पर रख दिया जहाँ उन्होंने अपने पाप का दण्ड पाया था। प्रयोजन था—जनता के लिये पाप से दूर रहने की शिक्षा का स्मृति चिन्ह रहे। मन्दिर के द्वार पर हाथी के पांव तले कुचल कर मारे गये विशाख और मेघा की मृत्यु के समाचार से जनता भयभीत थी। अनेक प्रकार की दन्त-कथायें—मन्दिर में प्रेतात्माओं के चीत्कार करने और मन्दिर की भयानकता के विषय में फैल गयी थीं और जनता मन्दिर से दूर रहती थी।

प्रधान पुजारी की प्रार्थना से शुभ लग्न में मन्दिर को राज्यप्रवेश से पवित्र करने का आयोजन किया गया था। धर्मरक्षक, महाप्रतापी महाराज भद्रसिंह स्वर्ण के रथ पर सवार हो राजप्रासाद से राजमन्दिर की ओर चले। राजपथ अनेक रंग के बेलनों से चित्रित और धान की श्वेत खीलों से छाया हुआ था। राज-पथ के दोनों ओर खड़ी जनता धर्मरक्षक महाप्रतापी की जय-ध्वनि कर रही थी। रथ के आगे मंगल गान करने वाले चारण और मंगल वाद्य बजाने वाले वादक चल रहे थे।

मन्दिर के द्वार से एक सौ पद पहले महाराज रथ से उतर कर पाँव पैदल चलने लगे। उनके साथ राजपुरोहित स्वर्ण के आधार पर देव-पूजा का अर्घ्य तथा पूजा के उपकरण लेकर चल रहे थे। जन-समाज जय-ध्वनि कर रहा था।

मन्दिर के द्वार के समीप पहुँच कर महाराज की दृष्टि विशाख और मेघा की मूर्तियों पर पड़ी। कला-मर्मज्ञ महाराज उन मूर्तियों को ध्यान से

देखने लगे और फिर उसी ओर आकर्षित हो गये। महाराज उन मूर्तियों को अनेक क्षण तक अपलक देखते रहे और फिर मूर्तियों के सम्मुख नतजानु हो कर महाराज ने मूर्तियों की वन्दना की।

वैदश राज्य-पुरोहित की ओर देखकर महाराज ने उन मूर्तियों की पूजा के लिये आदेश दिया।

पंडितों ने स्तोत्र पाठ किया और पुजारियों ने विधिपूर्वक मूर्तियों की पूजा की। महाराज ने पुन मूर्तियों के सम्मुख श्रद्धा से मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और गद्गद् स्वर में पुकार उठे—

"वन्दे पार्वती परमेश्वरौ!"

शंख-वाहक ने शंख स्वर से आकाश गुंजा दिया। जनता ने तुमुल स्वर से देवताओं और महाराज का जय-घोष किया।

महाराज के आदेश से मन्दिर में प्राचीन देव-मूर्ति के स्थान पर कला के चमत्कार से पूर्ण नवीन मूर्ति युगुल स्थापित कर दिया गया और राम मन्दिर का नाम 'शिव पार्वती' का मन्दिर प्रसिद्ध हो गया।

४

खुदा की मदद

उबेदुल्ला 'मेव' और सैय्यद इम्तियाज अहमद हाई स्कूल में एक साथ पढ़ रहे थे। उबेद छुट्टी के दिनों में गांव जाकर अपने गुजारे के लिये अनाज और कुछ घी ले आता था। रहने के लिये उसे इम्तियाज अहमद की हवेली में एक खाली अस्तबल मिल गया था। इम्तियाज का बहुत-सा समय कन-कैयाबाजी, बटेरबाजी, सिनेमा और मुजरा देखने में चला जाता और कुछ फुटबाल, क्रिकेट में। वालिद साहब कुछ पढ़ने-लिखने के लिये परेशान ही कर देते तो वह पलंग पर लेट कर नाविल पढ़ता-पढ़ता सो जाता। जब इम्तियाज यह सब फन और हुनर पास कर रहा था, उबेदुल्ला अस्तबल में अपनी खाट पर बैठ कर तिकोन का क्षेत्रफल निकालने, 'क्ष' को 'ज्ञ' से गुणा करके 'ज' से भाग देकर, उसे 'म' और 'ल' के जोड़ के बराबर प्रमाणित करने और इस देश को ईस्ट-इण्डिया कम्पनी द्वारा दी गई बरकतें याद करने में लगा रहता।

इम्तियाज को उबेद का बहुत सहारा था। स्कूल में जब मास्टर लोग, घर पर काम करने के लिये दिये गये काम के बारे में सख्ती करने लगते तो वह उबेद की कापियों की मदद लेकर मास्टरों की तसल्ली कर सकता था। उबेद यह सब देखता और सोचता—मेहनत और सब्र का फल एक दिन मिलेगा। खुदा सब कुछ देखता है।"

उबेद मैट्रिक के इम्तिहान में पास हो गया। इम्तियाज के वालिद सैय्यद मुर्तजा अहमद को काफी दौड़-धूप करनी पड़ी। उनका काफी रसूख था। इम्तियाज भी पास हो गया। उबेद का अपने गाँव में गुजारा मुश्किल था। घर की जमीन इतनी कम थी कि सभी लोग घर पर रहते तो निठल्ले बैठे रहते या दूसरों के खेतों में मजदूरी करते। जुताई पर जमीन मिल जाना भी

आसान न था। घर वाले उबेद से कहते—"इतना पढ़ाया-लिखाया है, तो क्या हल चलवाने के लिये ? अगर जमीन से ही सिर मारना था तो इल्म का फायदा क्या ?"

उबेदुल्ला आगरे में कोशिश करता रहा। कभी भट्ठे पर नौकरी मिल जाती, कभी किसी जूते के कारखाने में मुंशी का काम कर लेता था। तनखाह बीस-बाइस रुपये मिलती और नौकरी पक्की नहीं। इतने में इम्तियाज़ मुरादाबाद में सब-इन्स्पेक्टरी पास करके आ गया। उसे अपने ही शहर में नौकरी मिल गयी। इम्तियाज ने फिर उबेद की मदद की। उबेद कान्स्टेबिल बन गया।

यह ठीक है कि लाल पगड़ी और खाकी वर्दी पहन कर उबेद आम लोग-बाग के सामने हुकूमत दिखा सकता था लेकिन जान-पहचान के लोगों में, साथ पढ़ने वालों का सामना होने पर उसके मुह में कड़वाहट-सी आ जाती; खास तौर पर जब उसे इम्तियाज़ के सामने सलूट देनी पड़ती। वह भूल न सकता कि स्कूल में इम्तियाज उसकी कापियों से नकल किया करता था लेकिन इनसान के किये ही सब कुछ हो सकता तो खुदा कि हस्ती को इनसान कैसे पहचानता ? सैयद इम्तियाज रसूल के खानदान में थे। सोचता, कभी तो मेहनत और ईमानदारी का नतीजा सामने आयेगा। खुदा सब कुछ देखता है।

कान्स्टेबिल उबेद की ड्यूटी नाके पर लगती या रात को रौंद में पड़ती तो चवन्नियों, अठन्नियों की शक्ल में फायदा उठा लेने का मौका रहता था। उसके साथ के सब लोग ऐसा करते ही थे वर्ना अठारह रुपये की कान्स्टेबिली में क्या रखा था ? पर उबेद नियत न बिगाड़ता। उसे ईमानदारी और मेहनत के अंजाम पर भरोसा था। जब वह एड़ी ठोक कर दारोगा साहब को सलूट देता था तो मन में एक आदर्श की पूजा करता था। यह आदर्श था—सिर की लाल पगड़ी पर लटकता सुनहरा झब्बा, पीतल का चमचमाता ताज, कंधे से कमर तक लगी हुई चमड़े की पेटी। तनख्वाह चाहे अधिक न हो, पर वह सरकार का प्रतिनिधि होगा। इतिहास में उसने कई बादशाहों और खलीफाओं का जिक्र पढ़ा था जो स्वयं गरीबी में गुजारा करके इनसाफ करते थे। वैसे ही यह भी करेगा। हिन्दुस्तानी अफसर अकसर कमीनापन करते हैं। अंग्रेज के हाथ में इनसाफ है इसलिये खुदा ने अंग्रेज को इतना रुतबा दिया है।

सैयद इम्तियाज अहमद सी० आई० डी० डिपार्टमेंट में हो गये थे। उबेद

पढ़ा-लिखा था। उन्होंने उसे भरोसे लायक आदमी समझ कर अपने यहाँ ले लिया। उसे अदना सिपाही की वर्दी से मुक्ति मिली, साइकिल का और दूसरे भत्ते मिलने लगे। ड्यूटी की जहमत के बजाय उसका काम हो गया खबर लेना-देना। सरकार के सामने उसकी बात का मूल्य था। उबेद ने एक तथ्य समझ लिया—शहर में जितना आतंक, अपराध और सनसनी होगी, सरकार की दृष्टि में पुलिस का मूल्य उतना ही अधिक होगा। सैयद साहब स्वयं चाहे जो करते हों लेकिन उन्हें ऐसे आदमियों की जरूरत थी जो कम-से-कम उन्हें धोखा न दें। ऐसे मामलों में अक्सर उबेद की ड्यूटी लगती। मेहनत का नतीजा भी उबेद को मिला। जल्दी ही उसकी वर्दी की आस्तीन पर पहले एक बत्ती, फिर दो बत्तियां लग गयीं।

उबेद को उस महकमे में नौकरी करते बरस ही पूरा हुआ था कि सन् ४२ का अगस्त आ गया। जगह-जगह से रेल और तार के खम्भे उखाड़ दिये जाने और थाने जला दिये जाने के भयंकर समाचार आने लगे। उबेद को लोग-बाग की आँखों में सरकार के लिये और अपने लिये नफरत और सरकशी दिखाई देने लगी। उसे याद आया कि स्कूल में सन् १८५७ के गदर का हाल पढ़ते समय जाहिरा तारीफ अंग्रेजों की ही की जाती थी लेकिन सभी के मन में मुल्क को आजाद करने के लिये विदेशियों से लड़ने वालों की ही इज्जत थी। मालूम होता था कि फिर वही वक्त आ रहा है लेकिन अब वह अंग्रेज सरकार का नौकर था। एक बार वह मन में सहमा ' अगर रिआया और सरकार की इस पकड़ में सरकार चित्त हो जाये तो उसका क्या होगा ?

उस मानसिक उलझन में उबेद ने रेडियो पर लाट हैलेट साहब का फर्मान सुना। लाट साहब ने कहा था—"इस वक्त सरकार मुल्क के बाहर दुश्मनों से लड़ रही है। कुछ शरारती और सरकश लोग रिआया को सरकार के खिलाफ भड़काकर अमन में खलल और परेशानियाँ पैदा कर रहे हैं। हमारी सरक.र को अपनी वफादार रिआया, पुलिस और फौज पर पूरा भरोसा है। हमारी सरकार के जो अमले इस सरकशी और बदअमनी को खत्म करने में जी-जान से इमदाद करेंगे, सरकार उनकी खिदमतों का मुनासिब एतराफ करेगी। पुलिस और फौज को सरकशी खत्म करने और अमन कायम करने का फर्ज पूरा करने में जो सख्ती करनी पड़ेगी उसके लिये सरकारी नौकरों, पुलिस या फौज के खिलाफ कोई शिकायत नहीं सुनी जायगी, न उसकी कोई च-पड़ताल होगी।"

उबेद का सीना गज भर का हो गया। बाजारों में जनता की 'इन्कलाब जिन्दाबाद!' और 'अंग्रेजी सरकार मुरदाबाद!' की आसमान फाड़ देने वाली चिल्लाहटों और थानों, कचहरियों को जला देने की अफवाहों से थर्राते उबेद के दिल को सान्त्वना मिली। उसने सोचा—'उधर जिन्दाबाद और मुर्दाबाद की चिल्लाहट और लाखों सरकश हैं तो हमारे पास भी राइफलों से मुसल्ला गारदें, फौज, तोपखाने और हवाई जहाज हैं। अगर एक बम आगरे पर गिरा दिया जाय तो सरकश रिआया का दिमाग दुरुस्त हो जाय!"

थाने में अधिकतर मुसलमान सिपाही थे। कोतवाल साहब भी मुसलमान थे। उन्होंने रेडियो पर सुनाया गया 'कायदे आजम' का एलान सब सिपाहियों को बताया कि 'हिन्दू-कांग्रेस' की इस बगावत का मकसद अंग्रेज सरकार को हटा कर मुल्क में 'हिन्दू-कांग्रेस' का राज कायम करना है। मुसलमानों को इस बगावत में कोई सरोकार नहीं है। मुसलमान हिन्दू कांग्रेस से डर कर, उनका राज हरगिज कायम न होने देंगे।

कोतवाल साहब सिपाहियों को यों भी समझाते रहते थे कि मुसलमान हाकिम कौम है। वे हमेशा मुल्क पर हुकूमत करते आये हैं। इसी आगरे के किले में मुसलमान हुकूमत करते थे। अंग्रेज हमेशा मुसलमान का एतबार और इज्जत करता है। ईसाई हमारे अहलेकिताब हैं। खुदा ने अंग्रेज को ओहदा दिया है और हम लोगों को उसकी मदद करने का हुक्म है। यह कांग्रेस के बनिये-बक्काल क्या हुकूमत करेंगे? इन्हें चरखा कातना है तो लहँगा पहन लें और बैठकर सूत कातें। मुसलमान शेर कौम है। हमेशा से गोश्त खाता आया है। अब घास कैसे खाने लगे?

उबेद भी सोचता था—इन लोगों के राज में हम लोगों का गुजारा कैसे हो सकता है? हम लोग भला हिन्दू की गुलामी करेंगे? रिआया की सरकशी और बगावत की जीत का मतलब है कि पुलिस, फौज और हुकूमत तबाह हो जाये। जैसे हम लोग कुछ हैं ही नहीं यानि हम लोग दो रोटी के लिये सिर पर खावा रखे तरकारी बेचते फिरें या इनके लिये इक्के हाँकें। उसने मन-ही-मन सरकश रिआया को गाली दी और उनके प्रति नफरत से थूक दिया।

उस समय रिआया ने सरकार की जानें क्या समझ लिया था। पटवारियों, तहसीलदारों, जैलदारों, की सब ज्यादतियों और जबरन जंगी चन्दा वसूल किये जाने का बदला लेने के लिये देहातों में खाली हाथ या ढेला-पत्थर और लाठी ले-लेकर उठ खड़े हुए। ज्यों-ज्यों जनता का विरोध बढ़ता जा रहा

था सरकार सिपाहियों का लाड़ और खुशामद अधिक कर रही थी।

यू० पी० के पूर्वी जिलों के देहात में विद्रोह अधिक था। पश्चिम के जिलों से वफादार और समझदार पुलिस को स्थानीय पुलिस की सहायता के लिये भेजा गया। सैयद इम्तियाज अहमद की मातहती में उवेद भी बनारस जिले में गया। विशेष भरोसे का और समझदार होने के नाते उसे खद्दर की पोशाक में देहाती बन कर सरकशों का पता लगाने का काम सौंपा गया था। दिन भर गांव-गांव फिर कर अगर वह सांझ को खबर देता कि सब अम्नो-आमान है तो सैयद साहब उसे फटकार देते और रपट लिखते कि''' 'मातबर जरिये से पता चला है कि पड़ोस का थाना फूंक देने वाले सरकश लोग गांव में छिपे हुये हैं।' रपट में कुछ सरकश बनियों के नाम खास तौर पर लिख देते। कप्तान साहब के यहां उवेद की कारगुजारी पहुंचने पर उसकी पीठ ठोंकी जाती।

पुलिस की गारद जाकर गांव को घेर लेती। एक-एक झोंपड़ी और मकान की तलाशी ली जाती। भगोड़ों का पता पूछने के लिये लोगों को मुशकें बांध कर पीटा जाता, औरतों को नंगी कर देने की धमकी दी जाती। तबीयत होती तो पुलिस धमकी को पूरा करके दिखा देती। इस मुहिम में पुलिस वालों के हाथ जो लग जाता, उनका था। किसी के घर से घी की हांडी, गुड़ की भेलियां, किसी की अंटी से दो-चार रुपये, किसी औरत के गले या कलाई से चांदी के गहने उतर जाने का क्या पता चलता था? सिपाहियों ने खूब खाया। सेरों चांदी की गठरियां उनके थैलों में छिपी रहती थीं। किसी घर में छबीली औरत या जवान लड़की की झांकी पा जाते तो घर की तलाशी जरूर ले लेते। मर्दों को शक में पकड़ कर कैम्प में भिजवा देते और औरतों से पूछते—बताओ भगोड़े बदमाश कहाँ छिपे हैं? और उनसे जवाब लेने के लिये बांह से घसीट कर अरहर के खेतों में ले जाते। शान्ति कायम करने के लिये पुलिस की इन हरकतों के खिलाफ यदि किसी देहाती के माथे पर बल दिखाई देते तो उसे पेड़ से बांध कर उसके सारे शरीर के बाल झाड़ दिये जाते। पुलिस अनुभव कर रही थी कि वही राज कर रही है।

बदमाशों की खोज-खबर लगाने का काम सरकार की दृष्टि में सब से महत्वपूर्ण था। 'कटौना' का थाना फूंकने वालों का पता लगाने के लिये उवेद को मोहरसिंह के साथ ड्यूटी पर लगाया था। रघुनाथ पांडे छः मास से फरार था। उवेद ने साधु का भेष बनाया और काशी जी में फिरता रहा।

वह हाथ देख कर भाग्य बताता, रमल बनाता और बात-बात में राजपलट होने, नये राजा, तालुकदार बनने और ताम्बे का सोना बनाने की बातें करता। इसी तरह बातों-बातों में उसने रघुनाथ पांडे को खोज निकाला और गिरफ्तार करवा दिया।

देश में शान्ति स्थापित हो गई थी। उबैद आगरा लौट आया और उसकी कारगुजारी के इनाम में उसे हेड कास्टेबिल का ओहदा मिला। आगरे में भी उसे सियासी फरारों की तलाश के काम पर लगाया गया था। यहां उसने कुछ दिन इक्का हांक कर, फरार निर्मलचन्द को गिरफ्तार करा दिया था। उसे पूरा भरोसा था कि जल्दी ही सब-इन्सपेक्टरी मिल जायगी।

मुल्क में अमनोआमान कायम हो गया था पर जाने अंगरेजों को क्या सूझा कि उन्होंने सरकार का काम कांग्रेस वालों को सौंप दिया। अफवाहें उड़ रही थीं कि सब जेल जाने वाले ही अफसर बनेंगे और अंग्रेज सरकार से वफादारी निबाहने वालों से बदले लिये जायगें। कुछ दिनों में ही इतना परिवर्तन हो गया कि जो गांधी टोपी छिपती फिरती थी अब अकड़ कर मोटर पर सवार थाने में पहुंचने लगी। अब लाल पगड़ी को उसके सामने झुक कर सलाम करना पड़ता। अंगरेज सरकार के समय जिन अफसरों का मान था वे अब घबरा रहे थे। पुरानी सरकार के प्रति वफादारी, नई सरकार की निगाह में गद्दारी हो सकती थी।

उबैदुल्ला सोचता था—यह अल्लाह ने क्या किया ? पुलिस के बड़े मुसलमान अफसर, सैयद इम्तियाज अहमद और दूसरे साहबान, तुर्की टोपी की जगह किश्तीनुमा टोपियां पहनने लगे और फिर गांधी टोपी। वे अपने से नीचे ओहदे के सहमे हुए लोगों को समझाते—"हमारा फर्ज है हाकिमेवक्त का वफादार रहना। सियासत से हमें क्या मतलब ?"

उबैदुल्ला मन ही मन सोचता कि बेइज्जत होकर बर्खास्त होने से बेहतर है कि बाइज्जत रहकर खुद इस्तीफा दे दे। इस नयी सरकार को उसकी क्या जरूरत ? खास कर सियासी-खुफिया पुलिस की इस सरकार को क्या जरूरत ? रिआया का अपना राज हो गया है तो लोग खुद ही कानून बनायेंगे और उन्हें मानेंगे; कौन बगावत करेगा, जिसे हम पकड़ेंगे ? यह जनता की सरकार हमें क्यों पालेगी ?

सरकारी नौकरों और पुलिस और फौज को अपनी मर्जी से हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बँट जाने का मौका दिया गया था। उबैद ने सोचा कि

इस हिन्दू राज से पाकिस्तान ही चला जाये। बड़े-बड़े मुसलमान अफसर भी ऐसी ही बातें कर रहे थे। पुलिस में मुसलमान ही ज्यादा थे। उबेद सोचता—सब पुलिस अगर पाकिस्तान में ही पहुँच जाय तो रिआया से ज्यादा तो पुलिस हो जायेगी। वह घबरा रहा था। वह जिन लोगों की चौकसी करके डायरी लिखा करता था वे लोग सब सरकारी परमिटें लेकर बड़े-बड़े कारोबार कर रहे थे। जब तक बड़े लाट लोग अँग्रेज थे, कुछ धीरज था। उमीद थी कि शायद फिर दिन फिरें। एक बार पहले भी कांग्रेस सरकार हुई थी, और चली गयी थी। लीग वाले भी जोर बांध रहे थे लेकिन अगस्त १९४७ में जब लाट भी कांग्रेसी बन गये, तो वह धीरज भी जाता रहा।

उबेद देखता रहता था कि सैयद साहब अब इस या उस कांग्रेसी नेता के यहाँ मिलने आते-जाते रहते थे। प्रायः जिक्र करते रहते थे कि उनके मरहूम वालिद साहब, मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली के जिगरी दोस्त थे और खिलाफत तथा कांग्रेस में काम करते थे। वे एक बार लखनऊ भी हो आये थे।

उबेद सोचता—"सैयद साहब तो खानदानी और बड़े आदमी हैं। पहले रसूख के जोर ओहदे पर चढ़ गये अब भी इनका गुजारा हो जायगा। अंग्रेजी सरकार के जमाने में इन्होंने मुसाहबियत के सिवा किया क्या है? लेकिन हमने तो ईमानदारी और नमकहलाली निबाही है। ऊपर के दफ्तरों में रिकार्ड देखे जा रहे होंगे। बर्खास्तगी का हुक्म आया ही चाहता है।

अँग्रेजों ने हिन्दुस्तान का शासन कांग्रेस और लीग को ऐसे समय सौंपा जब युद्ध के बोझ के कारण देश की आर्थिक अवस्था अस्त-व्यस्त हो चुकी थी। कीमत चौगुनी चढ़ गयी थी। मुनाफे के लोभ में व्यापारियों ने बाजारों को समेट कर गोदामों में बन्द कर लिया था। सरकार राष्ट्र-निर्माण करना चाहती थी। जनता रोटी मांग रही थी। व्यवसायी लोग दाम नीचे न गिरने देने के लिये माल कम बना रहे थे। जो माल बनता उसे सरकारी कीमत की मोहर लगवाये बिना चोर-बाजार में खींच लेते। मजदूर अपनी मजदूरी मे पेट न भर पाने के कारण मजदूरी बढ़ाने की मांग कर रहे थे। मजदूरी न बढ़ने पर मजदूर हड़ताल की धमकी दे रहे थे। सरकार हड़ताल को राष्ट्र के लिए घातक समझ रही थी। हड़ताल-विरोधी कानून बना दिये गये थे। इस पर भी हड़ताल न रुकी। सरकार कम्युनिस्टों को हड़ताल के लिये जिम्मेवार समझ कर गिरफ्तार करने लगी। कम्युनिस्ट लोग कांग्रेस और अँग्रेजों

की लड़ाई की परम्परा के अनुसार स्वयं बिस्तर लेकर थाने में पहुँच जाने के बजाय फरार होकर अपना आन्दोलन चलाने लगे। कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार करना सरकार के लिये एक समस्या हो गयी थी।

मिस्टर चक्रवर्ती अंग्रेज सरकार के जमाने में आतंकवादी लोगों के षड़-यंत्रों को तोड़-फोड़ लगाने और उन्हें गिरफ्तार करने में काफी कीर्ति कमा चुके थे। नयी सरकार ने उन्हें गुप्तचर विभाग का डी० आई० जी० बनाकर कम्युनिस्टों की गिरफ्तारी का काम सौंप दिया था। मिस्टर चक्रवर्ती ऐसे षड़-यंत्रों और अपराधियों को पकड़ने के लिये रसायनिक विधि का उपयोग करते थे। जैसे बूरे की मिसरी बनाने के लिये मिसरी की एक डली को चाशनी में लटका देने से चीनी के कण जल में सिमिट कर एक जगह जम जाते हैं और उन्हें बाहर कर लिया जाता है, वैसे ही उन्होंने अशान्ति की बात धीमे-धीमे करने वाले अपने आदमियों को जनता में छोड़कर सरगर्मी, लोगों को समेट लेने का उपाय निकाल लिया था।

अंग्रेज अफसर प्रायः नौकरी छोड़कर विलायत चले गये थे। सैयद साहब की तरक्की डी० एस० पी० के पद पर हो गयी थी। उबेद के लिये सैयद साहब के यहाँ से हुक्म आया। उसे मालूम हुआ कि पिछली कारगुजारी की बुनियाद पर उसे स्पेशल ड्यूटी के लिये चुना गया है। दो खास काम थे—एक तो पाकिस्तानी एजेंटों का पता लगाना और दूसरा मजदूरों में बदअमनी फैलाने वाले कम्युनिस्टों की खोज करना। उबेद को शौक हुआ। सरकार चाहे जो हो, इन्तजाम और निजाम तो रहेगा ही। वह फालतू नहीं हो गया था लेकिन वह अपने बिरादराने-दीन को पकड़ेगा? उसने मन को समझाया, 'मजहब और सियासत' अलग-अलग हैं। हाकिमेवक्त से वफादारी भी तो अल्लाह का हुक्म है। मजहब अपनी जगह है, मुल्क अपनी जगह। ईरानी और तुर्क दोनों मुसलमान हैं लेकिन अपने-अपने मुल्क के लिये उन में जंग होती रही है। फिर भी उसने कोशिश की कि हड़तालियों को पकड़ने पर ड्यूटी रहे तो अच्छा है। ऐसे आदमियों के खिलाफ उबेद को स्वयं ही क्रोध था। गरीब भले आदमी यों ही कपड़े के बिना मरे जा रहे हैं। ये बेईमान हड़ताल कराके कपड़ा नहीं बनने देते थे। शहर में बिजली, पानी बन्द करके दुनिया को मार देना चाहते थे। ऐसे कमीनों का तो यह इलाज था कि जूते लगाकर काम लिया जाता। कमीने लोग कभी खुशी से काम करते हैं? उनका तो इलाज ही डंडा है।

[illegible]

[illegible] बात ही थी कि [illegible] इसीलिये [illegible] में दफा १४४ लगा दी हुई थी। हुक्म था कि [illegible], जुलूस न निकलें। [illegible] मजदूरों को भड़काने वाले नारों के लिये [illegible] और [illegible] का खतरा था। फिर भी [illegible] में, [illegible] में, [illegible] पर, सड़कों पर [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] मजदूरों के नारे लिखे दिखाई देते—'चोरबाजारी बन्द करो! मुनाफाखोरों को फाँसी दो! मजदूरों को महंगाई भत्ता दो! रोटी-रोजी दो! बिजली पानी दो! जालिम कानून हटाओ! मजदूर नेताओं को छोड़ो!"

उबेदुल्ला कान खोल कर मजदूरों में फैलती अफवाहें सुनता रहता—मीटिंग में बात पक्की हो गयी कि महंगाई के लिये हड़ताल जरूर होगी। कल रात मीटिंग में लीडर आये थे। स्वदेशी वाले, म्योर वाले, जुबैंग वाले सब तैयार हैं। देखें कौन रोकता है। उबेद मिल में चाहिद के नाम से भरती हुआ था। वह इन बातों में बहुत उत्साह दिखाता। मजदूरों की टोलियों में खूब ऊँचे नारे लगाता। वह सोचता कि गुपचुप होने वाली मीटिंगों में जा पाये तो असली भेद पाये और फरार नेताओं का सुराग मिले। जाहिरा ऐसे नारे लगा कर भी वह मन में सोचता—कमीनों का दिमाग कैसा फिर गया है। अंग्रेज के बराबर कुर्सी पर बैठने वाले, इतने बड़े-बड़े नेताओं की सरकार पलट कर अपनी सरकार बनायेंगे? शरीफ अमीर आदमियों का राज उखाड़ कर कोरियों, पासियों, भंगियों और मजदूरों का राज बनेगा? कैसी बदमाशी की साजिश है! कहते हैं, मजदूरों की कमेटियाँ मिलें चलायेंगी। मालिक महंगाई बनाये रखने के लिये दो तिहाई मिलें बन्द किये हुए हैं। इन लोगों की चल जाय तो दुनिया ही पलट जाय? ये लोग छिपे-छिपे कितना जोर बाँध रहे हैं। इनके सैंतालीस नेता फरार हैं। सब कानपुर में हैं और पता नहीं चलता। पिछली बातों से खतरा और भी बढ़ गया था। इनका एक

बड़ा नेता गिरफ्तार हुआ था तो पिस्तौल कारतूस भी बरामद हुये थे। पिस्तौल पसली पर रख कर पिट्ट भी कर दें! इनका क्या भरोसा है? उबेद सदेह न होने देने के लिये अपनी डायरी देने थाने न जाता था। कर्नलगंज में रहने वाले एक खुफिया इन्स्पेक्टर के यहाँ ही जाता था।

उबेद को सब-इंसपेक्टरी की तनखाह, ड्यूटी का भत्ता और शाहिद आयरनमैन की मजदूरी भी मिल रही थी लेकिन मुसीबत कितनी थी। उसे आयरनमैन की मजदूरी में ही गुजारा करना पड़ता था। वह आराम के लिये पैसा खर्च करता तो साथ के लोगों को शक हो जाता। इसी तरह चार महीने बीत गये थे। वह अपनी तनखाह और भत्ता लेने भी न जा सका था। वह सरकार के खजाने में जमा हो रहा था। उसका बुरा हाल था। पेट भी ठीक से नहीं भरता था। चबैना और मूंगफली खाते-खाते खुश्की से दिमाग चकराने लगा था। साफ कपड़े पहनने के लिये जी तरस जाता था। वह मजदूरों की बाबत सोचता—कमीनों को यह तो हालत है कि रोटियों को तरसते हैं और करेंगे राज! कमबख्तों का यही तो इलाज है कि खाने को न दें और जूतियाँ मार-मार कर काम लें। हमेशा से कायदा ही यह रहा है। वह अपनी ड्यूटी की सख्ती से परेशान था। इतनी मुसीबत अंग्रेज के जमाने में कभी न हुई थी।

एक दिन हद हो गई। शाम के वक्त वह थक कर दीवार की कुनिया में पीठ लगा कर बैठ गया था। इंजीनियर साहब आ रहे थे। वह देख न पाया इसलिये उठ कर खड़ा न हुआ था।

इंजीनियर साहब ने उसे ठोकर मार कर गाली दी। उबेदुल्ला ने बड़ी मुश्किल से अपना हाथ रोका। मन में तो कहा—'बेटा, न हुआ मैं बाहर, नहीं तो हथकड़ी लगवा कर थाने ले जाता और सब शेखी झाड़ देता। क्या समझते हो अपने आपको? दूसरे जैसे आदमी ही नहीं है। गम खा जाना पड़ा कि बहुत बड़े काम के लिये वह सब बर्दाश्त कर रहा है।

रात में दूसरे मजदूरों के साथ दरोगपुरवा की एक कोठरी में लेटा-लेटा वह सोचने लगा—मजदूरों के साथ कम-से-कम मार-पीट और गाली-गलौज तो न होनी चाहिये। मजदूरों में सब कमीने ही लोग थोड़े हैं। यहाँ पैसा लेकर मजदूरी करते हैं, अपने घर चाहे जो हों। उसे अपने दो भाइयों की बात याद आ गयी। एक अहमदाबाद में और दूसरा रतलाम में मजदूरी करने चला गया हुआ था। इसी सिलसिले में वह सोचने लगा—कम-से-कम पेट

भरने लायक मजदूरी तो मिले। जब सरकार अपनी है तो उसे हालत ठीक से मालूम होनी चाहिये। मजदूरों की भी सुनी जाय।

मिल के साथी मजदूरों को शाहिद पर विश्वास हो जाने से उसे हाथ की लिखाई में पर्चे पढ़ने को मिलने लगे। इन पर्चों पर प्रेस का नाम नहीं रहता था। इन पर्चों में सरकार के खिलाफ ऐसी सरकशी की बातें और जंग का एलान रहता था "....जो सरकार मुनाफाखोरी, चोरबाजारी के हक जायज समझती है, उसके राज में मेहनत करने वाली जनता कभी सुखी नहीं हो सकती। व्यापार के नाम पर मुनाफे की लूट केवल किसानों और मजदूरों के राज में खत्म हो सकती है, जब पैदावार मुनाफे के लिये नहीं, जनता की जरूरतें पूरी करने के लिये की जायगी।....यह पूंजीपतियों का राज जनता का स्वराज्य नहीं है। यह सिर्फ हिन्दुस्तानी और विदेशी मुनाफाखोरों का समझौता है। मेहनत करने वालों का स्वराज्य केवल मेहनत करने वालों की अपनी पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी ही कायम कर सकती है। कम्युनिस्ट पार्टी मेहनत करने वाली जनता के अधिकारों की रक्षा के लिये इस सरमायादारी हुकूमत के खिलाफ जंग का एलान करती है। आप लोग अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिये व्यक्तिगत और सुसंगठित तौर पर लड़ने के लिये तैयार हो जाइये। पुलिस के दमन का मुकाबिला कीजिये। अपने गली-मुहल्लों और अहातों में पुलिस राज समाप्त करके, मेहनत करने वाली जनता का राज कायम कीजिये।"....आदि आदि।

उबेद ऐसी खुली बगावत का एलान देखकर सिहर उठा। दुलीचन्द ऐसे पर्चे शाहिद को पढ़ाकर वापस ले लेता था। शाहिद पर्चों को दो तीन बार पढ़कर शब्दों को याद कर लेने की कोशिश करता ताकि बिलकुल सही-सही रिपोर्ट दे सके। अकेले में मन-ही-मन उन्हें दोहराता रहता। मन-ही-मन वह सोचता—सरीहन खुली बगावत है और साथ ही यह भी सोचता, इन मजदूरों के खयाल से बातें भी सही हैं। लाखों लोग तो इसी हालत में हैं। उसने एक राज फिसल कर दूसरा राज आता देखा था। वह सोचने लगता—क्या तीसरा राज आयेगा? जैसे इन दोनों राजों में वह एक ही काम करता आया है, वैसे ही वही काम करता चला जायगा? तब उसे गल्ले और कपड़े के गोदाम छिपाने वालों का पता लगाना होगा। ऐसे आदमियों की पड़ताल करनी होगी जो रिआया को भूखी और नंगी रखते हैं। ऐसे विचारों से कर्नैलगंज में इंस्पेक्टर साहब के यहाँ रिपोर्ट लिखाने जाने का उत्साह फीका

पड़ने लगा। अब उसे अपना काम बहुत कठिन जान पड़ने लगा लेकिन वह बड़ी होशियारी से आँख बचाकर अपनी रिपोर्ट पहुँचाता रहा। वह सरकार का नमक खा रहा था और खुदा के हुक्म हाकिमेवक्त का नौकर था।

एक दिन दुलीचन्द ने उससे कहा—"पार्टी के मेम्बर क्यों नहीं बन जाते ?"

उबेद मन-ही-मन सिहर उठा लेकिन प्रकट में कहा—"बन जाऊँगा।"

उबेद ने मन में सोचा कि पार्टी के मेम्बर बन जाने पर ही उसे भीतरी षड्यन्त्र का पता चलेगा। दूसरा ख्याल आया कि यह तो अपने ऊपर एतबार करने वालों के साथ दगा होगा। उबेद मन-ही-मन बहुत परेशान हुआ। पार्टी का मेम्बर बनने से इनकार करे तो फर्ज में कोताही और खुदा के हुक्म अपनी सरकार से दगा है। पार्टी का मेम्बर बन कर उसका राज दूसरों को दे तो गरीब साथियों और खुदा की मख्लूक के साथ दगा है। उसने अपने मन को समझाया कि आखिर तो वह सरकार का ही नमक खा रहा है और खुदा ने सरकार को ताकत दिया है। वह खुदा के इन्साफ में क्यों शक करे ? उबेद तो परेशानी में था लेकिन दुलीचन्द को शाहिद जैसे समझदार, पक्के और जोशीले साथी को पार्टी का मेम्बर बनाने की धुन सवार थी। उसने उसे पार्टी का कार्ड दिलवा दिया और एक रात उसे पक्के साथियों की मीटिंग में ले गया।

मीटिंग में पन्द्रह-बीस साथी थे। दूसरी-दूसरी मिलों के कामरेड लीडर बता रहे थे—"हड़ताल के मतलब होते हैं, मालिकों की हुकूमत के खिलाफ मजदूरों के मोर्चे को मजबूत करना। मजदूरों का मोर्चा सिर्फ पार्टी के मेम्बरों का मोर्चा नहीं है। मजदूरों का मोर्चा तमाम मेहनत करने वाली जनता का मोर्चा है। पार्टी के मेम्बर इस मोर्चे में राह दिखाते हैं। वे मोर्चे के मालिक नहीं हैं। जो लोग बाबू लोगों से, जमादारों से, पुलिस वालों से अपनी दुश्मनी समझते हैं, वे गलती पर हैं और मजदूरों के मोर्चे को नुकसान पहुँचाते हैं। हमारे दुश्मन सिर्फ वे लोग हैं जो जनता की मेहनत को लूटना, अपना हक समझते हैं।" तबके सिर्फ दो हैं, एक लूटने वाला और दूसरा लुटा जाने वाला। नौकर सब लूटने वाले तबके में से हैं। फर्क इतना है कि वे लोग अपनी बिरादरी और समाज को न पहचान कर लूटने वालों के हाथ बिके हुए हैं। उनकी किस्मत मालिकों के हाथ का खेल है।" हमारा मोर्चा मार-पीट, जोर-जुल्म का मोर्चा नहीं है। यह मोर्चा पक्के इरादे से अपने हक को पाने का मोर्चा है।"

कामरेड लीडर के चेहरे पर बढ़ी हुई मूँछें और कतरी हुई दाढ़ी थे

बावजूद इंसपेक्टर साहब से मालूम हुए हुलिये से उबेद पहचान गया था कि यह फरार लीडर कामरेड नाथ था। उबेद ने फर्ज़ पूरा करने के लिये इस मीटिंग की ओर नाथ के बदले हुये हुलिये की रिपोर्ट भी इंस्पेक्टर साहब के यहाँ पहुंचा दी। इसके बाद वह दो ओर मीटिंगों में भी गया। बड़ी भारी मुकम्मल हड़ताल की तैयारी के लिये गुप्त मीटिंगें बार-बार हो रही थीं। इंसपेक्टर साहब का हुक्म था कि ऐसी मीटिंग का समय और स्थान मालूम करके उबेद वक्त रहते उन्हें खबर दे लेकिन उबेद को मीटिंग का पता ऐसे समय लगता कि खबर दे आने का मौका ही न रहता था।

पांचवीं गुप्त मीटिंग हड़ताल के लिये आखिरी बातें तय करने के लिये की जानी थी। मिल से छुट्टी होते ही शाहिद को कहा गया कि ग्वालटोली के चार साथियों, प्यारे, नोतन, लेखू और नब्बन को खबर दे आये। ग्वाल-टोली जाते हुए उबेद कर्नलगंज में खबर देता गया। इस बात के नतीजे से वह खुद घबरा रहा था लेकिन खुदा के रूबरू वह अपने फर्ज से कोताही कैसे करता ? इस मानसिक परेशानी में वह बार-बार अल्लाह को गुहराता कि वही उसकी मदद करे, उसे गुमराह होने से बचाये।

एक हरीकेन लालटेन की रोशनी थी। अलगनियों पर कपड़े और घर का सामान लाद कर सब लोगों के बैठने के लिये जगह बनायी गयी थी। कानपुर के एक लाख मजदूरों और शहर के करोड़पतियों और सरकार में जंग का फैसला हो रहा था—पिकेटिंग के समय कौन लोग देखभाल करेंगे, लाठी चार्ज होने पर क्या किया जायगा ? गैरकानूनी जुलूस निकाला जाय या नहीं ? दूसरे मजदूरों के दिल से खतरा दूर करने के लिये कौन लोग पहले मार खायें और गिरफ्तार हों ? ख़याल रखा जाय कि इधर से लोग भड़क कर ईंट-पत्थर चलाकर पुलिस को गोली चलाने का मौका न दें।

आधी रात के समय मीटिंग हो रही थी। तीन लीडर आये हुये थे। हड़ताल के लिये कामरेड नाथ आखिरी बातें समझा रहे थे।

उबेद के कानों में साँय-साँय हो रहा था। उसका कलेजा धकधक कर रहा था। वह लगातार बीड़ी पर बीड़ी सुलगा रहा था। दूसरे कई लोग भी बीड़ी पी रहे थे। लीडर कामरेड मौलाना ने भूरी-भूरी आँखें निकाल कर डाँट कर कहा—"बीड़ी बुझा दो सब लोग। क्या बेवकूफी करते हो ? देखते नहीं हो, दम घुट रहा है ? तुम लोग क्या जंग लड़ोगे जो क्या नाम एक घंटे तक बिना बीड़ी के नहीं रह सकते !"

उवेद बीड़ी फर्श पर दबाकर बुझा रहा था। दूसरे लोगों ने भी बीड़ी बुझा दी। उसी समय पड़ोस से ऊँची पुकार सुनाई दी—"भूरे! ओ भूरे!"

मौलाना की पीठ तन गई—"पुलिस आ गई!" उन्होंने कहा। वे तुरन्त कागज समेटने लगे, और बोले, "जमन कामरेडों को निकाल दो! मोती, दरवाजे पर डट जाओ, भीतर न आने देना।"

गड़बड़ मच गयी। शाहिद का दिल और भी जोर से धड़कने लगा। दस सैकिंड भी नहीं गुजरे थे कि दरवाजे पर से धमकी सुनाई दी—"दरवाजा खोलो! दरवाजा तोड़ दो!" पिस्तौल की दो गोलियाँ चलने की भी आवाज सुनाई दी। सादे कपड़े पहने पुलिस थी। पुलिस और मजदूरों में हाथापाई हो रही थी। तीन गोलियाँ और चलीं। वर्दी वाली पुलिस भी आ गयी।

बारह आदमी गिरफ्तार हो गये।

दुनीचन्द के घुटने में और नब्बन की बाँह के डौले में गोली लगी थी। दूसरे लोगों को भी चोटें आयी थीं। तीनों लीडर कामरेड निकाल दिये गये थे। पुलिस के लोगों में शाहिद को कोई भी नहीं पहचानता था। उसने भागने की कोशिश भी नहीं की। वह भी गिरफ्तार हो गया था। मुहल्ले के बाहर चार पुलिस लारियाँ खड़ी थीं। तीन-तीन गिरफ्तारों को पुलिस के साथ इनमें बन्द किया गया और वहीं कोतवाली पहुँचाया गया। सब लोगों को अलग-अलग बन्द कर दिया गया।

अगले दिन चौथे पहर कर्नलगंज वाले इंस्पेक्टर साहब और एक उन से बड़े अफसर आये। उन लोगों ने उबेदुल्ला की कारगुजारी की तारीफ की। उन्होंने कहा—"बड़े-बड़े मच्छ तो जाल तोड़ कर निकल गये। कितने बदमाश हैं यह लोग! फिर भी इनके बारह खास आदमी हाथ आ गये हैं। फिलहाल इनकी यह हड़ताल तो न हो सकेगी।"

साहब ने उबेदुल्ला को समझाया—"इन बदमाशों पर मामला चलाया जायगा कि इन्होंने पुलिस के काम में अड़चन डाली, पुलिस से मारपीट की, एक दारोगा और चार कांस्टेबिल को जख्मी किया है लेकिन गवाही सब पुलिस की ही है इसलिये उवेद को सरकारी गवाह बनना पड़ेगा। पन्द्रह बीस दिन की ही तो बात है। जेल में सब आराम का इन्तजाम हो जायगा। घबड़ाने को कोई बात नहीं है। कल इन सब लोगों को जेल की हवालात में भेज दिया जायगा। उवेद के लिए जेल में अलग इन्तजाम हो जायगा। दो-एक रोज में बयान तैयार हो जायगा। उवेद को वह बयान मैजिस्ट्रेट के सामने

देना होगा। साहब ने कहा है कि इस मामले में छूटने पर उबेद को किसी थाने का इन्चार्ज बना कर पच्छिम में भेज दिया जायगा।

सब गिरफ्तार दंगाइयों को पुलिस से फौजदारी करने की दफा में मुलजिम बनाकर जेल हवालात में भेज दिया गया था। उबेद भी जेल भेज दिया गया लेकिन उसे अलग कोठरी में रखा गया। उस पर खास वार्डर की ड्यूटी थी कि उससे कोई मिलने न पाये। सिर्फ पानी देने वाला, खाना पहुँचाने वाला, अस्पताल की कमान के कैदी और भंगी उसकी कोठरी में आते-जाते थे। इन्हीं में से कोई खबर दे गया कि उसके बाकी साथी कह रहे हैं, शाहिद को भी उनके साथ रखा जाय और उसे साथ न रखा जाने पर भूख हड़ताल की तैयारी है।

उबेद परेशान था कि क्या करे। उसने कितने ही मुश्किल काम किये थे लेकिन ऐसी मुसीबत कभी न आई थी। कचहरी में खड़े होकर वह इन लोगों के खिलाफ बयान कैसे देगा? कैसी-कैसी गालियाँ वे लोग इसे देंगे? और फिर वे लोग जेल किस बात के लिये भेजे जा रहे हैं?

तीसरे दिन उसकी कोठरी में आने-जाने वाले कैदियों की आँखें बदली हुई दिखाई दीं। उस पर ड्यूटी देने वाले जमादार की आँखें बचाकर, एक गैरपहचाना कैदी उसे गाली देकर और उसकी ओर थूक कर कह गया—"साला मुखबिर है।"

उसी दिन शाम को मैजिस्ट्रेट उसका बयान कलमबन्द करने के लिये जेल में आये। मैजिस्ट्रेट ने उससे कहा—"हलफ लो, खुदा को हाजिर-नाज़िर जान कर सच बयान दोगे!"

शाहिद ने होंठ दबा लिये।

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—"तुम्हारा नाम शाहिद है—वालिद का नाम?"

शाहिद चुप रहा।

मैजिस्ट्रेट ने धमकाया—"बोलते क्यों नहीं?"

"साथ खड़े सी० आई० डी० के इंसपेक्टर साहब ने भी कहा—"अपना बयान दो।"

शाहिद ने जवाब दिया—"मेरा नाम शाहिद नहीं, मैं खुदा को रूबरू जान कर हलफिया झूठ नहीं बोल सकता।"

मैजिस्ट्रेट ने आश्चर्य से अंग्रेजी में कहा—"यह क्या तमाशा है?"

सी० आई० डी० के इंस्पेक्टर ने उबेद को समझाया—"अरे इसमें क्या

है ? यह तो जाब्ते की बात है। कचहरी में खुदा थोड़े ही हाजिर हो सकते हैं, इसमें क्या रखा है ?"

उबेद ने हकलाते हुए कहा—"हुजूर नौकरी करता हूं, जान देकर सरकार का नमक हलाल कर सकता हूँ पर ईमान नहीं बेच सकता।" उसने छत की तरफ हाथ उठाया, "वह दुनिया भी तो है।"

मैजिस्ट्रेट साहब ने इन्सपेक्टर साहब को डाँट दिया—"यह सब क्या फरेब है ? मैं ऐसा बयान नहीं लिख सकता। मुझे रिपोर्ट में यह सब लिखना होगा।"

इस परेशानी में बयान न लिखा जा सका।

अगले दिन उसे समझाने के लिये दूसरे बड़े अफसर आये, बोले—"ऐसी नमक-हरामी, गद्दारी करोगे तो सात बरस की नौकरी, कारगुजारी, सरकार के यहाँ जमा तनख्वाह तो जब्त होगी ही, साथ ही सरकार की नौकरी में रह कर बगावत करने के जुर्म में फाँसी, काले पानी की सजा तक हो सकती है।"

उबेद ने जवाब दिया—"सरकार मालिक हैं। मैंने गद्दारी नहीं की, नमकहरामी नहीं की लेकिन खुदा के रूबरू दरोगहल्फी करके आकबत नहीं बिगाड़ सकता। यहाँ आप मालिक हैं, वहाँ वह मालिक है।"

उबेदुल्ला का मामला आई० जी० साहब के यहाँ गया हुआ था। इसी बीच दूसरे बारह आदमियों पर पुलिस से फौजदारी करने का मामला चल रहा था। पुलिस ही मुद्दई थी और पुलिस ही गवाह थी। गवाही माकूल नहीं थी। मामला गिर जाने की आशा थी। मुलजिम लारियों में नारे लगाते हुये अदालत आते-जाते थे। मुलजिमों के वकील बार-बार शाहिद को अदालत में पेश करने की दरख्वास्तें दे रहे थे। पुलिस की तरफ से जवाब था कि शाहिद पर से यह फौजदारी का मामला हटा लिया गया है। वह दूसरे मामले में मफरूर था। उसकी तहकीकात अलग से हो रही है।

मजदूरों को विश्वास था कि कामरेड शाहिद को सरकारी गवाह बनाने के लिये पीटा गया है लेकिन उसने अपने साथियों से गद्दारी करना मंजूर नहीं किया। पुलिस उसे परेशान कर रही है। वे नारे लगाते थे—"कामरेड शाहिद जिन्दाबाद ! कामरेड शाहिद को रिहा करो !"

जेल वालों की चौकसी के बावजूद यह खबर भी उबेद तक पहुंची। उसकी आखें खुशी से चमक उठीं। उसने अल्लाह को याद कर, दुआ के लिये हाथ फैलाकर कहा—"या खुदा, शुक्र तेरा ! एक बार तो तेरे नाम ने जिन्दगी में मदद की, यही बहुत है !"

प्रतिष्ठा का बोझ

समझ लीजिये, उसका नाम केवलचन्द था।

केवलचन्द को अपने ही शहर अम्बाला में, 'मिलिटरी इंजीनियरिंग सर्विस' के दफ्तर में नौकरी मिल गई थी। उसे १९४१ में भत्ता मिला कर ८५) की नौकरी मिल जाने से सन्तोष हुआ था। अम्बाला में उसका अपना छोटा मकान था। १९४६ में जब सब चीजों के दाम चौगुने हो गये तो १०५) माहवार मिलने पर भी हाथ खाली ही रह जाते थे, कुछ बचता ही नहीं था। सफेदपोशी निबाहना भी सम्भव नहीं हो रहा था।

अम्बाला के 'मिलिटरी इंजनियरिंग सर्विस' के कुछ लोगों ने आन्दोलन चलाया कि उनका महंगाई भत्ता बढ़ना चाहिए, उन्हें क्वार्टर मिलने चाहिए, उनके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार होना चाहिए। केवलचन्द भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हुआ। इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि आगे बढ़कर बात कहने वाले लोग बर्खास्त हो गये। केवलचन्द के घर की अवस्था खराब थी। पिता की मृत्यु हो चुकी थी, बूढ़ी मां को दमा था, कुछ ही महीने पहले उसका विवाह हुआ था और पत्नी आते ही बीमार रहने लगी थी। रहने का मकान अपना जरूर था परन्तु महाजन के यहां रेहन था। उसने आन्दोलन में भाग लेने के लिए मुआफी मांग ली। वह नौकरी से बर्खास्त तो नहीं हुआ परन्तु उसकी बदली लखनऊ में हो गयी थी।

केवलचन्द लखनऊ में रहने लायक जगह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते शहर भर की सड़कों, बाजारों, गलियों, मुहल्लों और अहातों से परिचित हो गया। शहर की भिन्न-भिन्न स्तर की बस्तियों का जीवन उसने देखा। सिविल लाइन्स की कोठियों, बंगलों के भाग में जगह ढूंढ़ना व्यर्थ था। वह बड़े लोगों की जगह थी। वह शहर की घिच-पिच, बेरौनक जगहों में, जहाँ लोग मकान पर मकान बनाकर

आकाश के टंडे सितारों में रहते थे, वहीं भी जगह ढूँढ़ रहा था। केवल ऐसी जगह में भी रहने के लिए तैयार न था जहाँ शहर भर का मल पानी बह कर पोखरों, मैदान या ओरतेली मोरी सड़क के किनारे धुआँ भरी कोठरों में जीवन के सब काम पूरे करते रहते हैं। जहाँ मकान की दहलीज के बाहर नाली में मलमूत्र से मुक्ति पाकर दहलीज के भीतर चूल्हे पर पेट के लिए अन्न पकता रहता है और वहीं धुएँ से उकताये से उड़ते हुए थे, मक्खी मच्छर और देह की दुर्गन्ध में मनुष्य के जीवन की सृष्टि और अवसान की सब क्रियाएँ पूरी होती रहती हैं। ऐसे लोग शहर का गन्दा जीवन छोड़कर इसलिये नहीं जा सकते कि शहर के मालिक सम्पन्न लोगों को अपनी सेवा कराने के लिये इन की आवश्यकता रहती है।

केवल को इन लोगों के ऐसा असामाजिक जीवन स्वीकार करने पर क्रोध आता—यह लोग ऐसा जीवन क्यों स्वीकार करते हैं, क्यों जालिमों की सेवा करते हैं? उत्तर था—तुम क्यों सि० ई० म० की नौकरी करते हो! यह त्याग करें क्या? खायें क्या? इनके लिये यही विधान है। केवलचन्द के लिये भी विधान था कि उसे दफ्तर में बैठकर 'क्लर्कगिरी' करनी होगी और लखनऊ शहर में ही रहना होगा।

मकान न मिलने की समस्या से उसके मन में, मकानों का मनमाना किराया वसूल करने वालों के प्रति और सब दूसरों को सिर छिपाने की जगह भी नहीं मिल रही हो तब हर काम के लिये एक-एक पूरा कमरा रखने वालों के प्रति और अपने मकानों के सामने बड़े-बड़े बाग लगा कर जगह घेर लेने वालों के प्रति एक कटुता भर दी। जहाँ भी रहने लायक जगह मिलती, किराया मांगा जाता—पचास-साठ रुपये। यह थी किराये की लाठी, जिसके बल पर उसे लाखों जगह में भी घुसने नहीं दिया जा रहा था।

पंडित शिवराम के पुत्र की बदली मुरादाबाद में हो गयी थी। वहाँ क्वार्टर मिल जाने के कारण पंडित जी का पुत्र पत्नी को भी ले गया था। पुत्र और पुत्र-वधू के जाने की जगह, ऊपर टीन से छाई बरसाती खाली हो गयी थी। पंडित जी ने दो मास का किराया पेशगी लेकर वह बरसाती केवलचन्द को तीस रुपये मासिक पर दे दी।

केवलचन्द उस बरसाती में अपना बिस्तर और बक्सा रख कर, एक खाट खरीद कर लौटा ही था कि उसे गली में, धीरे-धीरे गुण्डों को भगा लेने के विरोध का कोलाहल सुनाई दिया।

पंडित जी की बरसाती से प्रायः आठ-दस हाथ जगह छोड़ कर तिमंजिले मकान की दीवार पक्की ईंटों की खड़ी थी। शायद पंडित जी के विरोध के कारण ही इस दीवार में खिड़कियाँ नहीं बनाई जा सकी थीं। इस ऊंचे मकान की दीवार में खिड़कियाँ बनने से साथ के मकानों का पर्दा बिगड़ता था। ऐसे ही कारणों से पड़ोस वैर का कारण बन जाता है।

इस तिमंजिले मकान की तीसरी मंजिल के छज्जे से एक स्थूल शरीर प्रौढ़ महिला मुंह और आंखें फैला कर और हाथ बढ़ा-बढ़ा कर ऊँचे स्वर में पुकार रही थी—"आग लगे ऐसी कमाई में। आग लगे ऐसे लालच में। इन लोगों की ईँट से ईँट बज जाय। मुहल्ले में सांड लाकर बसा रहे हैं। मुहल्ले की बहू-बेटियों के पर्दे और इज्जत का कोई ख़याल नहीं।"

तंग गली के दूसरी ओर के मकान की खिड़की से भी एक सांवली, दुबली सी प्रौढ़ा बोल उठी—"न जानें न बूझें, गली में लौंडे भरे जा रहे हैं। अपनी बहू को तो कमाई के लिये परदेस भेज दिया। दूसरों की आफत कर रहे हैं। सीधा खाने वाले की जात को इज्जत का क्या ख्याल। पैसे पर जान देते हैं। आग लगे ऐसे लोभ में!" इस विरोध के बाद महिला ने गली में बरसाती के सामने खुलने वाली अपनी खिड़कियाँ भीषण आहट से बन्द कर दीं। बाँई ओर के मकान से भी विरोध हो रहा था।

भगवान के इजलास में होती इस फरियाद पर एकतरफ़ा डिगरी हो जाने की आशंका में पंडितानी भी अपने दरवाजे पर आ खड़ी हुईं। वस्त्रहीन सीने पर एक हाथ से धोती का आँचल खींचे, दूसरी बांह फैलाकर पंडितानी दुहाई देने लगी—"अपने मकानों में चार-चार किरायेदार भर रखे हैं। दूसरों को दो पैसा आता देख कर जिनके कलेजे में आग लगती है, उनसे भगवान समझें। इन्हीं कर्मों से तो जवानी में रांड हुई। दूसरों का पैसा खाकर जो भाग गया है वह कभी जिन्दा न लौटे।……"

पंडितानी ने तिमंजिले मकान की मालिक खत्रानी की जवानी के अपकर्मों का भी प्रचार आरम्भ कर दिया।

सामने गली पार के छज्जे में एक बहू कुछ उधेड़बुन कर रही थी। उसने उठ कर पर्दे के लिये जंगले पर एक चदरा डाल लिया।

बांई ओर के मकान से एक बाबू हाथ में छतरी लिये दफ्तर जाने की पोशाक में निकले। पान का बीड़ा भरे मुंह से उन्होंने कलह करती स्त्रियों को आश्वासन दिया—"पंडित को लौटने दो। सब पूछताछ हो जायगी।

गृहस्थों के मुहल्लों में ऐरे-गैरे लोगों का बसना कैसे हो सकता है ? अकेले रहने वालों के लिए बाजार में बैठकें हैं, होटल हैं।"

केवलचन्द को स्वयं दफ्तर जाने की जल्दी थी। इस विरोध से उस के हाथ-पाँव उलझ रहे थे। वह कुछ न बोला। कोठरी में ताला लगाकर सिर झुकाये गली से जा रहा था। खन्नानी ने उसे लक्ष कर विरोध का स्वर ऊंचा कर दिया।

सध्या समय केवलचन्द, सकट को जितनी देर हो सके टालने के विचार से विलम्ब से मकान पर लौटा। अपनी सज्जनता के प्रति विश्वास पैदा करने के लिये वह गली में आते समय आँखें नीचे किये था। इस घर में उस घर में आती-जाती, जर्जर और मैली धोतियों में दृष्टि की पहुंच से अपर्याप्त रूप में रक्षित शरीर नारियों को पर्दा कर लेने के लिये सचेत करते जाने के लिये वह खाँसता भी जा रहा था।

खन्नानी अब भी प्रतीक्षा में छज्जे पर खड़ी थी। केवल को देखते ही उसने सुबह में स्थगित संग्राम की ललकार में गली को गुंजा दिया।

इस ललकार में पंडितानी भी बाहर निकल आयी और खन्नानी के कुकर्मों का विज्ञापन कर उसका इतिहास बखानने लगी। केवलचन्द उर्दू और किताबी हिन्दी जानता था। लखनऊ की स्थानीय बोली समझने में उसे उलझन हो रही थी परन्तु इस पहली ही संध्या उसे अपने पड़ोसियों का पर्याप्त परिचय मिलता जा रहा था।

अंधेरा हो जाने और सब मकानों में रोशनी जल जाने पर केवल ने भी एक मोमबत्ती जला ली। नारी युद्ध का कोलाहल कुछ समय पूर्व दब चुका था। नीचे गली में पुकार सुनाई दी—"ए नये बाबू साहब ! जरा नीचे तशरीफ लाने की तकलीफ गवारा कीजिये।"

गली में पुरुषों का एक प्रतिनिधि मण्डल उपस्थित था। कोई प्रश्न किये बिना उन लोगों ने गृहस्थों के मुहल्ले में अकेले पुरुषों के आकर रहने के अनौचित्य पर अपना मत प्रकट किया। केवलचन्द पंडित को अपना परिवार ले आने की बात कह चुका था। वही आश्वासन उसने इन लोगों के सामने भी दोहराया कि तीन-चार दिन की छुट्टी मिलते ही वह परिवार को ले आयगा। इस पर उसके जात-पाँत, वंश और घर की पूछ-ताछ हुई और प्रतिनिधि मण्डल उसे सबकी इज्जत का ख्याल करके शीघ्र ही स्त्री-पुत्र को ले आने की नसीहत देकर चला गया।

केवल ने खाट पर लेट कर विश्राम की सांस ली । परिवार को ले आने का आश्वासन तो उसने दे दिया था परन्तु दो खाटों के क्षेत्रफल के बराबर जगह में पूरे परिवार को कैसे बैठाये और छोड़ आये तो कैसे ? चूल्हा कहां बनायेगा ? जीने पर से पानी ढोते-ढोते उसकी जान तबाह हो जायगी ।

पुरुषों के संतुष्ट हो जाने पर भी नारी-समाज में विरोध का आन्दोलन बिलकुल नहीं दब गया था । विशेष कर तिमंजिले मकान के ऊपर वाले छज्जे से । परिणाम प्रायः स्त्रियों में कलह होता और केवल का गली के इतिहास के रहस्यों का ज्ञान बढ़ता जाता । उसे मालूम हो गया कि पंडित के मकान से लगता तिमंजिला मकान विधवा खत्रानी का है । उसमें दो किरायेदार हैं । खत्रानी दो ही सन्तान के बाद बीस-इक्कीस बरस की आयु से विधवा है। उसकी लड़की मर चुकी है । लड़का कम उम्र में ही सट्टा खेलने लगा था । ब्याह होते ही कहीं बहुत बड़ा घाटा गल्ले के सट्टे में खा बैठा और लेनदारों के भय से भाग गया था । खत्रानी के दो और भी मकान थे । लेनदारों को उसने अंगूठा दिखा दिया था । चुपके-चुपके गहना रख कर रुपया सूद पर देती थी । बहू उस की बड़ी सुन्दर है । वह सास से दो कदम आगे है । सास उसे किसी के यहाँ आने-जाने नहीं देती । खुद शहर में गश्त करती है और बहू को घर में छोड़ ताला लगा जाती है ।

विरोध का पहला उबाल बैठ गया था । केवलचंद के आ जाने से पड़ोस के मकानों में सुरक्षित नारी सौन्दर्य के प्रति आशंका का जो कोहराम उठ खड़ा हुआ था, उसने केवल के मन में उत्सुकता जगा दी थी । अब गली के लोग केवल को सहने लग गये थे । पड़ोसी उसे अपने कार्ड पर राशन और चीनी ला देने के लिये कहने लगे । दूसरी सहायता भी लेने लगे । अब वह कुछ ताक-झाँक भी करने लगा । सामने के मकान की खिड़कियां अब उतनी सख्ती से बन्द न रहती थीं । खत्रानी के मकान में स्त्रियां छज्जे के जंगले पर भीगी धोतियां सुखाने के लिये फैलाने आतीं तो केवल को खिड़की की ओर भी नज़र डाल जातीं । बीच की मंजिल की बंगालिन आंचल अस्त-व्यस्त होने पर भी बिना झिझके छज्जे पर बैठी तरकारी छीलती रहती । यों दिखाई दे जाने वाली स्त्रियां प्रायः पीली, सांवली और मुर्झाई हुई थीं । अलबत्ता सामने के मकान में बहू की आंखें बड़ी नशीली थीं और उसका चेहरा भी खासा नमकीन था । केवल को इधर-उधर देखने की विशेष रुचि न होती थी । कहीं दृष्टि जाने पर वह वितृष्णा से मुस्करा देता—क्या इसी के लिये इतना शोर था ।

गली के लोग केवलचन्द को सहने लगे थे परन्तु उधर सत्रानी का विरोध बिलकुल शान्त नहीं हो गया था। वह पड़ोस की और अपने किरायेदारों की बहुओं को 'पंजाबी' की आशंकामय उपस्थिति से सतर्क करती रहती थी। उसकी अपनी बहू यदि क्षण भर को भी छज्जे में ठिठक जाती तो सत्रानी हाथ से छूट गई काँसे की थाली की तरह इतने जोर से झल्ला उठती कि केवलचन्द की दृष्टि छज्जे की ओर उठे बिना न रह सकती। दृष्टि उधर उठती थी तो टिक भी जाती थी। बहू के दृष्टि से ओझल हो जाने पर केवल के हृदय में एक गहरी साँस उठ आती थी जैसे मांस में से काँटा खींच लिया जाने पर एक पीड़ा सी होती है।

केवलचन्द कवि हृदय न था। सत्रानी की बहू लक्ष्मी को लेकर उसे मेघों के बीच से झाँकते चाँद, ओस से धुले चम्पा के फूल, तालाब में लहलहाते कमल की उपमा याद न आयी। उसे ऐसा जान पड़ा कि जौहरी की दूकान में डिबिया खुल जाने पर रुई में लिपटे किसी मोती पर उसकी दृष्टि पड़ गयी हो। लक्ष्मी का रंग उसे ऐसा जान पड़ा जैसे केले का पेड़ फाड़कर भीतर से सफ़ेद चिकना डण्ठा निकाल लिया हो। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें चेहरे पर खूब चमकती थीं और माथे पर लाल बिन्दी ऐसी जान पड़ती कि किसी ने हाथी दाँत में लाल नग जड़ दिया हो। वह छज्जे पर आती तो उड़ती-उड़ती एक नज़र केवलचन्द की बरसाती की खिड़की के भीतर भी डाल लेती। केवल को बैठा देखती तो भय से भाग नहीं जाती।

केवलचन्द के उस गली में आने पर जो विरोध हुआ था उसको याद से कोई अनुचित साहस करते भय स्वाभाविक था, फिर सत्रानी के ही घर? यह बाघिन की माँद में जाकर उसके बच्चे पर हाथ डालना था परन्तु उस की आँख सत्रानी के छज्जे की ओर बरबस उठ जाती और बहू को पाकर वहीं टिकी रहती। दो सप्ताह ही बीते थे कि लक्ष्मी से उसकी आँख लड़ गयी। लक्ष्मी ने देखा और खड़ी रही। तीन-चार दिन बाद फिर आँख मिलने पर लक्ष्मी ने मुस्करा दिया। उस समय केवल यह भेद नहीं कर पाया कि फूल झड़ गये या मोती बरस गये। वह बेबस होकर अपनी खाट से उछल पड़ा—परिणाम की चिन्ता न कर लक्ष्मी की ओर देखने लगा। समीप पहुँच सकने के लिये वह कुछ भी कर गुजरने के लिये तैयार हो गया।

लक्ष्मी प्रायः बुनाई-कढ़ाई का काम लेकर छज्जे में केवल की बरसाती की ओर आ बैठती। गज भर ऊँचे लोहे के ढले हुये छज्जे की आड़ में होने

के कारण सामने और इधर-उधर के मकानों की खिड़कियों से वह दिखाई न पड़ती थी। छज्जे के छेदों पर आँख लगाये वह केवल की ओर देखती रहती। छेदों के समीप होने के कारण वह तो केवल की प्रत्येक गतिविधि को स्पष्ट देख पाती परन्तु केवल इतना ही जान पाता कि लछमी जंगले के साथ उसके सामने बैठी है। लछमी कभी ऊपर की खुली छत पर जाकर, दीवार पर से कुछ नीचे फेंकने के बहाने झांक कर, मुस्कान की एक झलक केवल को दिखा जाती। केवल तड़प कर रह जाता।

केवल का मन चाहता कि अपनी बरसाती में ही बैठा रहे, दफ्तर न जाय। लछमी को सामने मुस्कराते देखकर उसका मन ऐसे छटपटा उठता कि सिर फूटने की चिंता न कर सामने के छज्जे पर चढ़ जाय। उसकी आँखों ने दीवार की ईंटें गिनकर हिसाब लगा लिया था कि उसकी छत पर से ऊपर उठने वाली, खत्रानी के मकान की दूसरी मंजिल बारह फुट ऊंची है और तीसरी मंजिल दस फुट है। छज्जे की ऊंचाई दो फुट होगी। छः फुट तो वह खाट रखकर चढ़ जायगा। शेष आगे छः फुट... क्या है? दफ्तर में ड्राफ्टमैनी करते समय खत्रानी के छज्जों की बनावट ही आँखों के सामने नाचती दिखाई देती रहती।

नवम्बर का महीना जा रहा था। ऊपर टीन की छत होने के कारण केवल की बरसाती रात में खूब ठर जाती थी। पड़ोस की गलियों में ब्याह हो रहे थे। ठंड से नींद न आने पर वह स्त्रियों के गाने सुनता रहता और कुछ समझ कर मुस्कराता जाता। वह लखनऊ आया था तो गरमी का मौसम था। बोझ से बचने के लिये वह लिहाफ साथ न लाया था। दिन में तो उसे जाड़ा मालूम होता परन्तु रात में जाड़े से नींद टूट जाती थी। उस समय सोचता—छज्जे पर से चढ़कर लछमी के पास पहुँच जाय। इतवार की छुट्टी के दिन दोपहर में टीनों से छनती गरमी में लेटा वह लगातार लछमी के छज्जे की ओर देखता रहा। लछमी भी लाल ऊन और सिलाईयां लिये छज्जे में आ बैठी थी। थोड़ी-थोड़ी देर में उसकी ओर देखकर मुस्करा देती थी।

केवल सोच रहा था—मोटी (परोक्ष में खत्रानी को गली के लोग इसी नाम से पुकारते थे) इस समय चादर ओढ़कर शहर घूमने गयी होगी या किसी के यहाँ शादी ब्याह में गयी होगी। तभी लछमी निधड़क इतनी देर से बैठी है। जीने में सांकल लगाकर गयी होगी। वह छज्जे से जा सकता था। दोपहर थी, पड़ोस के सब लोग देख लेते। लछमी से पहले बात हो जाय तबतो? बात कैसे हो?

केवल ने लक्ष्मी को दूर से ही कुछ बार देखा भर था। बात कर सकने का प्रश्न ही नहीं था परन्तु लक्ष्मी के प्यार में उसका शरीर और मस्तिष्क तपा जा रहा था। वह उस प्यार के लिये जोखिम उठाने को तैयार था। यह प्यार कैसा था? स्त्री-पुरुष का प्यार, जिसका कारण केवल प्रकृति होती है।

मंगलवार दफ्तर से लौटते समय वह कहीं कुछ देर के लिये रुक गया था। होटल में खाना खाकर सूर्यास्त के समय गली में लौट रहा था कि उसने भवानी और उसके पीछे बहू को घूंघट ओढ़े, हाथों में प्रसाद के दोने लिये घर से निकलते देखा। लक्ष्मी से उसकी आँखें चार हुईं। उसने मुस्कराये बिना दृष्टि नीची कर ली। दुबली-पतली हाथीदांत की मूरत लक्ष्मी केवल को दूर से जैसी दिखाई देती थी, समीप आने पर उससे दस गुनी सुन्दर लगी। जैसे लक्ष्मी के शरीर की सुगन्ध सांस में जा उसके हृदय में भर गयी। उसका खून उबल उठा।

केवल चुपचाप अपनी बरसाती में चढ़ गया। सोचा, सास-बहू अमीनाबाद में हनुमान जी के मन्दिर जा रही हैं। वह लौट पड़ा और तेज कदमों से अमीनाबाद की ओर चला। बाजार में कुछ ही दूर जाकर उसकी आँखों ने दोनों को ढूंढ लिया। उन्हें निगाह में रखे वह बाजार के दूसरी ओर चलने लगा।

मन्दिर के बाहर प्रसाद और फूलों की दुकानों पर बेहद भीड़ थी। सास ने बहू को ठेले-धक्के से बचाने के लिये एक ओर खड़ा कर दिया और फूल लेने के लिये भीड़ में धंस गयी। बहू माथे पर चार अंगुल भर आंचल खींचे, मेहदी से रंगी चम्पई हथेली पर प्रसाद का दोना टिकाये एक ओर खड़ी रही। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें भीड़ पर तैर रही थीं,

केवल सास को ताड़ने के लिये आँखें भीड़ की ओर रखे लक्ष्मी के समीप बढ़ आया।

बहू ने हल्के से होंठ दबा लिये।

केवल धीमे से बोला—"प्यार करती हो?"

लक्ष्मी ने आँख झपक कर अनुमति दी।

"मिलोगी नहीं?"

बहू ने फिर आँख झपकी।

"कब?"

"आज रात अम्मा सोतीं में जायेंगी"

"आयें?"

"किरायेदार हैं।"

"छज्जे से आ जायं ?"

बहू ने कह दिया—"किरायेदार जल्दी सो जाते हैं।"

केवल सास के आने से पहले टल गया।

लौट कर केवलचन्द दुविधा में था। खत्रानी का जीना उसने देखा न था और छज्जे से चढ़ने में गिरने का काफी भय था। लौटते समय उसने आंखों ही आंखों में खत्रानी के जीने का सर्वे किया और खाट पर बैठकर छज्जे की बनावट और दीवार के साथ लगे पानी के नल पर लगी कीलों की दूरी देखता रहा। उसकी दृष्टि बराबर उसी ओर लगी थी। लछमी छज्जे पर दिखाई दी और उसने सिर पर आंचल सम्भालने के बहाने हाथ दिखा कर अभी ठहरने का संकेत कर दिया। केवल स्वयं भी दूसरी मंजिल में बत्ती बुझ जाने की प्रतीक्षा में था। इन कमरों के भीतर से छज्जे पर प्रकाश आ रहा था। सामने के मकानों में खिड़कियां सर्दी के कारण मुंदी थीं। केवलचन्द बाहर अंधेरी रात के पाले में बेचैनी से घूम-घूम कर प्रतीक्षा कर रहा था।

घण्टाघर से नौ का घण्टा बजने पर दूसरी मंजिल की बत्ती बुझ गयी। केवल ने पन्द्रह मिनट और प्रतीक्षा की। इस बीच लछमी कई बार छज्जे पर घूम गयी थी।

केवल सवा नौ बजे खाट से उठ बाहर आया। खाट खत्रानी के मकान की दीवार से खड़ी कर वह चढ़ने को ही था कि ऊपर से कुछ उसके सिर पर टपका। केवल ने ऊपर झांका। अंधेरे में लछमी के गोरे हाथ ने अभी और ठहरने का संकेत कर दिया।

केवल ने बिना आहट किये खाट उठा ली और भीतर जाकर छज्जे की ओर देखता प्रतीक्षा करने लगा। घण्टाघर से साढ़े नौ की 'टन्न' सुनाई दी। उस समय लछमी ने संकेत किया—आ जाओ !

केवल की खाट दूसरी मंजिल की ऊंचाई में आधे से कुछ नीचे पहुँची परन्तु वह दीवार के सहारे खाट की ऊपर की पटिया पर पांव रख खड़ा हो गया। बांह उठाकर तीसरी मंजिल के जंगले के नीचे छेदों में अंगुलियाँ फंसा लीं और शरीर को तोल कर शरीर को ऊपर उठाया। लोहे के एक खम्बे की मुंडेर पर पांव टिका लिया। इतना सहारा पाकर उसका दूसरा हाथ जंगले के सिरे पर पहुँच गया। वह उचक कर जंगले के भीतर जा पहुँचा। लछमी उसे बांह से थाम तुरन्त भीतर ले गयी।

केवल को पसीना आ गया था और उसका कलेजा धकधक कर रहा था। साँस धौंकनी की तरह चल रही थी परन्तु उससे भी अधिक उग्र थी उसकी चाह। उसने लक्ष्मी को बाहों में इतने ज़ोर से समेट लिया कि उसे अपने शरीर में ही समेट लेगा। वह उसके होंठों को खा जाना चाहता था ''''''।

सहसा ज़ीने के किवाड़ों की साँकल झनझना कर गिरने की आहट हुई और साथ ही किवाड़ खुल गये। दरवाज़ा खुलने से ज़ीने की बत्ती का प्रकाश भीतर फैल गया। सास ने भीतर कदम रखा और आँखें तथा मुँह फैलाये, हक्की-बक्की खड़ी रह गयी।

सास ने ज़ोर से चिल्लाने के लिये सीने में साँस भरा '' ''' ।

केवल की बाहों में सिमटी लक्ष्मी प्रायः बेसुध हो गयी थी। केवल ने उसे वैसे ही फर्श पर गिर जाने दिया। आत्मरक्षा के लिये वह सामने खड़ी, पुकारने के लिये तैयार सास पर टूट पड़ा। पुकारने के लिये खुले सास के मुँह से शब्द निकल पाने से पहले ही केवल ने सास के भरपूर शरीर को बाहों में लेकर समीप पड़े पलंग पर डाल कर ऊपर से दबा लिया '' '''।

केवल ने सास का गला नहीं दबाया परन्तु अवस्था ऐसी थी कि सास चिल्ला न सकती थी। सास ने दबे स्वर में विरोध किया—''है, हैं, क्या करते हो ?''

केवल के लिये विरोध को स्वीकार करना जीने-मरने का प्रश्न था।

बहू सुध सम्भालते ही कमरे से भाग गयी थी।

दस मिनिट बाद जब सास ने केवल की बाहों से मुक्ति पायी तो केवल की गाल पर ठुनका देकर मुस्कराकर शिकायत की—''बड़े वैसे हो तुम !''

सास ने पूछा—''ज़ीने में तो ताला था, आये किधर से ?''

केवल ने बताया। भय से सास के रोयें खड़े हो गये। उसके मुख से निकला—''हाय दैय्या !''

सास केवल को ज़ीने की राह नीचे पहुँचा देने को तैयार थी परन्तु केवल अपनी बरसाती के ज़ीने में भीतर से साँकल लगाकर आया था। सास ने उसे अपनी धोती दी कि छज्जे के खम्भे से बाँध कर आहिस्ता से नीचे उतर जाय।

अब सयानी बहू को छज्जे पर देखकर झुँझलाती तो बहुत धीमे से और प्रायः स्वयं छज्जे में आ बैठती। कभी वह आते-जाते केवल को गली से पुकार लेती—''भैय, तुम्हारे दफ्तर में चीनी राशन का कारड मिलता होगा ? भैये, चीनी की बड़ी किल्लत है। तुम तो होटल में पा जाते होगे। घर-बार वालों

की मुसीबत है ।" कभी पुकार लेती, "भैये, दफ्तर से आ रहे हो ? चाय तैयार है । एक गिलास पी लो बड़ा जाड़ा पड़ रहा है ।" कभी केवल कोई चीज मांगने या पहुंचाने स्वयं भी चला जाता । वह ऐसा समय देखता कि सास न हो । केवल गली के लिये उपयोगी था । वह अपने परिवार को अम्बाला से नहीं ला सका परन्तु अब इस विषय में कोई चर्चा नहीं उठती थी ।

× × ×

१९४४-४५ में कलकत्ते पर जापानियों के बम पड़ने के खतरे से बड़ी-बड़ी कम्पनियों के दफ्तर यू० पी० में आ गये थे । बंगालियों ने आकर लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, आगरा में जो भी जैसा भी स्थान मिला ले लिया । किराये ड्योढ़े-दूने तभी हो गये थे और फिर बढ़ते ही गये । खत्रानी ने भी अपना घर-बार ऊपर की मंजिल में समेट कर दूसरी मंजिल मुकर्जी बाबू को तीस रुपये माहवार पर उठा दी थी । सन ४५ के अन्त और ४६ के जनवरी में कलकत्ता निर्भय हो जाने पर बंगाली लोग लौटने लगे । मुकर्जी बाबू भी लौट गये ।

केवल को गली में रोककर खत्रानी ने कहा—"भैये, उस टीन के छप्पर के नीचे कैसे गुजर होती होगी । ऊपर से गरमी आ रही है । चाहो तो मुकर्जी बाबू की जगह आ जाओ, आराम से रह तो पाओगे !"

केवल प्रसन्नता से मुकर्जी की जगह चला गया ।

गली में फिर से कोहराम मच गया । पण्डितानी ने दरवाजे में खड़ी होकर गरीबों के पेट पर लात मारने वालों को भैरव बाबा को सौंपा । खत्रानी ने टीन के पिंजरे में फँसाकर लोगों को लूटने वालों को गालियां दीं—"इसने खसम बसा लिया था; जा रहा है तो इसे आग लग रही है । तेरा खरीदा हुआ गुलाम है क्या ?"

केवल ने गली के लोगों से कायदे की बात कही—उतनी जगह में वह बाल-बच्चों को कैसे लाता ? अब ढंग की जगह मिली है तो जाकर उन लोगों को ले आयेगा ।

बंगाली लोग तो म्लेच्छ होते हैं, मांस मछली खाने वाले । केवल अरोड़ा था । अरोड़ा और खत्री में क्या भेद । प्रकट में केवलचंद खत्रानी का किरायेदार ही था । भीतर ऊपर की दोनों मंजिलों में अधिक भेद न रहा परन्तु सास बहू पर कड़ी निगाह रखती थी । कभी धमकाती कि मायके भेज दूंगी ।

फिर कहती कि इसके घर के लोग बड़े वैसे हैं, जो कुछ ले जायगी सब वहीं रख लेंगे। केवल और बहू को कभी-कभी ही एकान्त में मुस्कराने का अवसर मिलता। केवल के लिये यह—अरुचिकर परिश्रम सहने का पुरस्कार था।

बरसाती में रहते समय केवलचन्द घर के लिये कुछ भी रुपया न भेज सका था। उस मास उसने घर से आये दुख भरे पत्र के जवाब में अपनी आधी तनख्वाह भेज दी। होटल वाले को भी कुछ न दे पाया। आधे मास किराया देने के बजाय सत्रानी से दो सौ और उधार लेकर कर्ज उतारे, कुछ घर भेजा और भला आदमी दिखाई देने के लिये एक सूट सिला लिया।

केवल के पांच मास मौज में कट गये। सत्रानी प्राय: सुबह-शाम उसे खाने के लिये भी बुला लेती—"भैये, बाजार का खाना क्या अच्छा लगता होगा; यहीं खा लो।" सत्रानी को भी फायदा था कि केवल के राशन कार्ड पर चीजें आधे दामों मिल जाती थी। ऋण के लिये उसने केवल को परेशान नहीं किया। अलबत्ता कभी याद दिला देती, "भैये अबकी तनख्वाह पर हमें दे देना। हमें जरूरत हैगी। तुम जानते हो हिसाब भाई-भाई और बाप-बेटे में भी ठीक होता है।"

मध्या समय केवल को असुविधा होती। वह लछमी से बात करना चाहता और सास अपने भारी-भरकम शरीर की आड़ में लछमी को छिपा कर डाँट देती—"तू जाकर लेटती क्यों नहीं। परायें मर्द के मुंह लगती है, मुंहजली।"

छ: मास बीत गये। सत्रानी का स्नेह केवल को सकट मालूम होने लगा। सोचता—कहीं दूसरी जगह कमरा ले ले। उसे अनुभव होता था, वह बहुत कमजोर होता जा रहा है परन्तु करता क्या? यह उसकी मर्दानगी को चुनौती थी। रात नौ-दस बज जाने पर भी यदि सत्रानी सोने के लिये ऊपर न चली जाती तो वह घबराने लगता और बाहर छज्जे पर आकर खड़ा हो जाता। अपनी पुरानी बरसाती की ओर देख कर सोचता—इससे तो वहीं अच्छा था।

केवल को छज्जे पर बहुत देर खड़े देखकर सत्रानी मुंह में पान भरे धीमे में पुकार बैठती—"भैये, अब सोओगे नहीं?"

केवल का जी चाहता कि छज्जे से धोती लटका कर उतर जाय, जैसे एक बार जान पर खेल कर यहाँ चढ़ आने पर लौटा था।

"जान पर खेलना अब जान का जंजाल हो गया था। लछमी भी अब

[illegible] जैसे सुन्दर चमकीला सांप हो। वह उससे भी कतराता [illegible]

[illegible] और ओढ़ते समय वह प्रतिदिन सोचता—यदि वह अपने [illegible] लौटे तो क्या है ? बिस्तर और बक्स का मूल्य [illegible] अधिक न था।

[illegible] में उसकी स्थिति दूसरी थी। लोग उसे संदेह और विरोध [illegible] परिचय और विश्वास से देखते थे। गलीके ने पहले उसके [illegible] व्यवहारों के बाबू लोग उससे अपनेपन और समानता का व्यवहार [illegible]। यह सब छोड़ कर वह कर्ज के डर से भागने का कमीनापन करे ? [illegible] गली-गली छिपता, मारा-मारा फिरे ?………

उसका शरीर निर्बल और मन उदास होता जा रहा था। कमर में [illegible] रहता था परन्तु वह गली में जम गयी अपनी सफेद पोशी की प्रतिष्ठा [illegible] को निबाहे जा रहा था………।

६

डरपोक कश्मीरी

हफजा आज-कल करके पन्द्रह दिन से अपनी मौत का दिन, 'मौत' का सामना करने के दिन टाल रहा था।

वह यह जानता था कि 'मौत' सकरी पहाड़ी पगडण्डियों पर दो दिन का सफर तय करके उसे पकड़ने के लिये नहीं आयेगी। अभी तक 'मौत' कभी इतना सफर तय करके किसी को पकड़ने नहीं आयी। 'मौत' क्या इतनी मोहताज और गरीब है कि बीहड़ पगडण्डियों पर हाँफती हुई, अपनी एड़ियों की बिवाइयों से नोकीले पत्थरों पर लहू के दाग बनाती हुई, हफजा जैसे आदमी को पकड़ने के लिये दो दिन का सफर तय करे? 'मौत' के पास सिपाही थे, घोड़े थे, बन्दूकें भी इसलिये हफजा जैसे सभी गरीब किसान लोगों को स्वयं यह सफर करके मौत के दरवाज़े तक जाना पड़ता था। और फिर 'मौत' से परे, 'मौत' से बड़ी चीज़ है किस्मत या खुदा। उससे कोई कैसे बच सकता है? खुद जाकर मौत के सामने हाज़िर होना ही होगा! फिर 'खुदाया' का रहम है" कि मौत कितना बख्श दे!

अपने बाप की मृत्यु के बाद जब से हफजा अपनी जमीन का मालिक बना, अपने खेतों का सरकारी कर देने लगा, वह सदा स्वयं ही जाकर बांजोरा के पटवारखाने में कर दे आता था।

हफजा के खेत हुल्मा गाँव में थे। हुल्मा गाँव बोड्मा के इलाके में है और बोड्मा का इलाका बांजोरा के पटवारखाने में लगता है।

हफजा ही नहीं बोड्मा के इलाके के सभी किसान इसी तरह अपना कर देने जाते थे। यह खेत या धरती किसानों की क्या थी? जब तक किसान सरकार का—महाराज का कर बांजोरा के पटवारखाने में जमा कराते रहते तभी तक धरती उनकी थी, नहीं तो धरती महाराज की थी।

इन खेतों को, धरती के इस टुकड़े को, महाराज ने कभी देखा न था। महाराज के पिता महाराज ने भी इन्हें न देखा था। बोइला के बूढ़े से बूढ़े किसान की स्मृति भी नहीं बता सकती थी कि किस महाराज ने इस धरती और खेतों को कब देखा था।

बोजीरा के पटवारखाने में पटवारी ठाकुर गज्जरसिंह राज करते थे। उन्होंने भी हुत्सा गांव नहीं देखा था। गज्जरसिंह से पहले उनके पिता इस इलाके के पटवारी थे। उन्होंने भी हुत्सा गांव कभी नहीं देखा था परन्तु नकशों में और पटवारखाने के कागजों में हुत्सा गांव दर्ज था। हुत्सा गांव के नकशे में ऊंचे पहाड़ों की पसलियों पर बने हफ़ज़ा, वल्द हामिद के खेत भी दर्ज थे। इन खेतों का क्षेत्रफल छः घुमा था। रबी और खरीफ का इन खेतों का लगान साढ़े छः रुपया था। बोजीरा जाकर यह लगान पटवारखाने में जमा कराते रहने से हुत्सा गांव के खेत महाराज की दया से हफ़ज़ा के थे।

किसान यदि खुद बोजीरा जाकर लगान जमा न करें तो क्या होगा? ऐसा प्रश्न उस इलाके में कभी किसी के मन में नहीं उठा था। अगर ऐसा होता भी तो क्या इतनी बड़ी सरकार उठकर हुत्सा जाती? कभी किसी की जानकारी में ऐसा नहीं हुआ था। कर न चुका सकने पर हफजा या हफ़ज़ा जैसे किसान स्वय पटवारखाने में जाकर दण्ड पाने के लिये हाजिर हो जाते थे। पटवारी साहब के हुक्म से कर दे सकने वाले किसान के खेत छिन जाते। दूसरा कोई किसान यदि नज़राना देता तो वे खेत उसके नाम दर्ज हो जाते; नहीं तो खिल्ले पड़े रहते। चौकीदार कर न दे सकने वाले का घर-बार जप्त कर नीलाम करके कर वसूल कर लेता और बोज़ीरा में जमा कर आता था। यदि दो किसानों में किसी बात पर झगड़ा होकर खून भी हो जाता तो खून करने वाला स्वयं ही बोजीरा जाकर अपने अपराध की सूचना दे देता और पटवारी साहब की कैद में बैठ जाता था।

बोजीरा के इलाके में बस्ती कम है। बस्ती कम है तो इन्तजाम भी कम है। दीवानी और फौजदारी, न्याय और प्रबन्ध के महकमे अलग-अलग नहीं हैं। सरकार का सब काम सरकार का एक ही प्रतिनिधि, पटवारी ही देखता और निबाहता आया है। सरकार का काम वहाँ सरकार की शक्ति की अपेक्षा सरकार की साख और उस पर लोगों के विश्वास से ही चलता है। गढ़वाल और अलमोड़ा के पहाड़ी जिलों में भी ऐसी ही अवस्था है।

हफ़ज़ा के खेतों से साल भर में मंडल के मोटे अनाज की एक ही फसल

होती थी। उसने भेड़ों की फसल कभी नहीं बेची। लगान के साढ़े ८ रुपये वह अपनी भेड़ों की ऊन, हुत्ता से नौ मील नीचे सड़क किनारे साहूकार सिरीचन्द के यहाँ बेच कर बोजीरा में जमा कर देता था।

सन् पैंतालीस में हफ़ज़ा की भेड़ों के मुँह आ गया था। चौदह में से बारह मर गयीं। सन् छियालीस में उसे खाने के लिये नमक नहीं मिला और उसके बाल-बच्चों के मुँह आने लगा। हफ़ज़ा की घरवाली मुस्की ने घर में जमा साढ़े चार रुपये की पूंजी में से चोरी करके बच्चों के लिये आठ आने का नमक खरीद लिया था। हफ़ज़ा ने मुस्की की नादानी से क्रोध में पागल होकर घर-वाली को पीटा पर कर क्या सकता था।

सन् छियालीस में हफ़ज़ा बोजीरा लगान देने गया। वह पटवारी साहब के सामने बहुत गिड़गिड़ाया। पटवारी साहब ने दो रुपये नज़राना लेकर अगले बरस दोनों बरस का पूरा लगान जमा कर देने की इजाज़त दे दी।

परन्तु अगले बरस मर चुकी भेड़ें जी नहीं उठी थीं। बच्चे तो नंगे थे ही। उनके शरीर पर 'फिरन' (गले से एड़ी तक शरीर को ढके रहने वाला चोगा) तो क्या, सिर की टोपी के लिये ही कपड़ा न था। उसका अपना शरीर भी फिरन के भीतर से दिखाई देता था। जाड़ों में जब धरती, दीवारें, छतें बरफ़ से ढक गयीं, दोनों बच्चे, मुस्की और हफ़ज़ा कण्डी (अंगीठी) को घेरे बैठे रहते। कंडी की आंच से झुलस-झुलस कर उनके सीने और पेट की खाल वैसी ही सहनशील हो गयी थी जैसी पाँव की एड़ी की खाल हो जाती है।

मुस्की की तीन बरस पुरानी फिरन इतनी जगह से और इतनी बार फट चुकी थी कि अब गला हुआ कपड़ा टांका सहार नहीं सकता था। मुस्की के लिये घर से निकलना ही सम्भव न रहा पर खेत पर और पानी के लिये जाना तो अनिवार्य था। बैसाख लगने पर हफ़ज़ा को 'खुदाया' (खुदा की इच्छा से) बच गई दोनों भेड़ें और उनके चारों मेमने ले जाकर सिरीचन्द साह के हवाले कर देने पड़े। उसकी दूकान से मुस्की का शरीर ढकने के लिये नीला सूती कपड़ा लाना जरूरी था।

हफ़ज़ा ने दोनों भेड़ें और मेमने इसलिये बचाकर रखे थे कि उन्हें बेचकर जमीन का लगान पटवारखाने में जमा करा देगा परन्तु खुदा की मर्जी या जो किस्मत में था। खुदा की मर्जी से जैसे भेड़ें मर गयी वैसे खुदा की मर्जी से लगान देने का दिन न टल सका।

हफज़ा पन्द्रह दिन से आजकल करके बोजीरा की ओर जाने का दिन टाल रहा था। उसके पास केवल अढ़ाई रुपये थे। वह पड़ोसी किसानों से और नौ मील दूर रहने वाले सिरीचन्द साह से कर्ज मांगने की सभी कोशिशें कर चुका था। उसे उधार देने वाला कोई न था। पड़ोसी सादी के पास रुपये थे। उसके घर के दो जवान लड़के पंजाब में हर साल मजदूरी के लिये जाते थे। उसके पास रुपया था और वह पटवारखाने में नजराना जमा कर हफज़ा की धरती का पट्टा ले लेना चाहता था। दुष्ट सादी इसी दिन को जोह रहा था। हर साल जब हफज़ा सादी से बैल और हल उधार लेकर अपनी जमीन जोतता था, सादी मन भर अनाज लेकर भी शिकायत करता रहता था कि उसका हल घिस रहा है, उसके बैल मरे जा रहे हैं, उसे कुछ नहीं मिला।

पन्द्रह दिन से आज-कल करता हफज़ा मन ही मन रो रहा था कि खेत उसके हाथ से निकल जायंगे। बाप-दादा की धरती उसके हाथ से निकल जायगी। वह पहाड़ी ढलवान पर से उखड़ गये पत्थर की तरह लुढ़क जायगा। वह कहां जायगा ? दोनों बच्चों और उनकी मां को लेकर कहां जायगा ? पन्द्रह दिन सोचकर भी वह इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं पा सका। उत्तर नहीं पा सका, तब भी बोजीरा गये बिना तो चारा नहीं था। जो होना था, होना ही था। खुदा की मर्जी।

मुश्की आंसू पोंछती झोपड़ी के दरवाजे में खड़ी रही। हफज़ा फटी फिरन को रस्सी से समेटे, सिर लटकाये भाग्य के भरोसे बोजीरा की ओर चला गया। आस-पास पहाड़ चांदी की टोपियां पहने, गहरे नीले आकाश में सिर उठाये खड़े थे। पेड़ों में पत्ते और फूल थे। चारों ओर प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य था। हफज़ा के पेट में भूख और हृदय में कल्पनातीत पीड़ा और मौत का भय था। वह बोजीरा के पटवारखाने की ओर लड़खड़ाता बढ़ता चला जा रहा था।

हफज़ा पटवारखाने में पहुँचा और बहुत देर तक बड़े दुमंजिले मकान के बराम्दे के बाहर खड़ा कांपता रहा। इलाके और गांव के नाम से पहचाने जाने के बाद उसने इतने दिन तक बेईमानी से छिपे रहने के अपराध में गाली सुनी। उसके बाद जब वह केवल दो रुपये आठ आने निकाल कर पटवारी साहब के पांव पर रखने लगा तो पटवारी साहब का क्रोध सीमा में कैसे रह सकता था।

हफज़ा बहुत गिड़गिड़ाया। उसे विश्वास था—खुदाया, पटवारी साहब

रहम करें तो सब कुछ कर सकते हैं परन्तु पटवारी साहब हफ़ज़ा और हफ़ज़ा जैसे आदमियों की ईमानदारी और गिड़गिड़ाहट तो सरकारी खजाने में जमा नहीं कर ले सकते थे।

पटवारी साहब ने चौकीदार को हुक्म दिया कि हफ़ज़ा की मुश्कें बांध कर आंगन में खड़े अखरोट के पेड़ के नीचे बैठा दिया जाय। हफ़्ज़ा गांव का दूसरा किसान जमान भी पिछले दिन से अपना लगान जमा कराने आया हुआ था। उसे हुक्म मिला कि हफ़ज़ा की घरवाली को खबर दे दे कि अपना लगान चुकता करके मर्द को छुड़ा ले जाये। उसके पास लगान न हो तो गांव का जो किसान चाहे पटवारखाने में नजराना देकर हफ़ज़ा के सेन मुचलिका करा ले।

रात पड़ गयी। अखरोट के पेड़ के नीचे बैठे, मुश्कें बंधे हफ़ज़ा ने सहारे के लिये सरक कर अपनी पीठ पेड़ के तने से सटा ली। उसने घुटने समेट कर शरीर को जाड़े से फिरन में छिपा लेने का यत्न किया। फिरन का नीचे का भाग टूट-टूट कर गिर चुका था। उसके घुटने छिप न पाये। रात बिताने की यह तैयारी करके उसने खुदा को रहम के लिये याद किया और सिर तने से लगाकर आंखें मूंद लीं।

सूर्यास्त के बाद ही सरसराती बर्फानी हवा चलने लगी थी। हफ़ज़ा की फिरन इस हवा को रोक न सकती थी। हवा बार-बार हफ़ज़ा के शरीर को गुदगुदा कर ठिठोली करता था। हफ़ज़ा को जान पड़ता था, जैसे किसी ने यख (बर्फ) के टुकड़े उसकी फिरन में छोड़ दिये हैं। हाथ बंधे होने के कारण वह फिरन को शरीर से अच्छी तरह चिपटा भी न सकता था। हफ़ज़ा आंखें मूंद कर अपनी स्थिति को भूल कर केवल खुदा को याद करना चाहता था परन्तु हवा का स्पर्श उसकी आंखें खोल देता था। बार-बार उसे ख्याल आता—खुदाया अगर फिरन के भीतर छोटी सी कांगड़ी (अंगीठी) होती। अपनी सर्दी भुलाने के लिये वह पटवारखाने की मुंदी खिड़कियों की सांधों से दिखाई देती रोशनी की ओर आंख लगाये था।

पटवारखाने में चार डोगरे संतरी रहते थे। एक संतरी ने पहरे की तैयारी के लिये पटवारखाने के बरामदे में खाट डाल ली। खाट पर रजाई, खाट के नीचे एक कांगड़ी रख ली। वह शरीर को फौजी ओवरकोट में ढके था। उसके हाथ में बन्दूक थी। वह खाट पर बैठकर जम्हाई लेने लगा।

पटवारखाने के भीतर रोशनी बुझ गई। हफ़ज़ा को आंखों में नींद न आयी। अब वह बरामदे में डोगरे संतरी की खाट के नीचे पड़ी कांगड़ी में राख

से रुके अपने अंगारों को देख रहा था । कभी अखरोट के पेड़ के घने पत्तों की ओर आँखें उठाकर अपने तारों की ओर देखने लगता । तारे बर्छों की नोक की तरह ठंडे थे । अंगारे सुन्दर और गरम । यह अंगारे ही उसके हाथों में होते या उसको जिस्म के भीतर आ जाते या गुज़ारा……

संतरी बैठा-बैठा थक गया । उसने बन्दूक खाट की पटिया से टिका दी और खटिया पर बैठकर कांगड़ी से आग लेकर चिलम के दम लगाने लगा । तमाखू की सुगन्ध उड़कर हफ़जा की नाक तक पहुँची । उसकी जीभ पिघलने लगी और मुंह में पानी आ गया । हफ़जा ने घूंट भर लिया । संतरी की ओर से आँखें हटाने के लिये पेड़ के तने से टिका कर मन ही मन उसने कहा—या खुदाया ‥ ……

खाट पर बैठा संतरी चिलम पीकर औंघाने लगा । हवा और तेज चल रही थी । अखरोट के पत्ते खड़खड़ा कर कह रहे थे—"सोजा, सोजा ।"

सहसा समीप ही पश्चिम की पहाड़ी की ओर से आहट सुनाई दी जैसे बकरियों का बड़ा रेवड़ ढलवान पर से उतर रहा हो । हफ़जा ने सुना परन्तु आँखें नहीं खोलीं—होगा, अपने को क्या ?

तुरन्त ही आहट और बढ़ी और संतरी की ललकार सुनाई दी—"कौन है ?"

हफ़जा ने आँखें खोलीं, गर्दन घुमा कर उस ओर देखा; भीड़ की भीड़ चली आ रही थी । संतरी बराम्दे से निकल आया । भीड़ की ओर देख कर सँतरी पटवारखाने के दूसरे संतरियों को पुकारने के लिये चिल्लाया —"पठान ! पठान !"

संतरी ऊंचे स्वर में चिल्ला भी न पाया । वह बन्दूक भरने लगा । उसके बन्दूक भर पाने से पहले ही भीड़ की ओर से बन्दूकें चलने लगीं । संतरी गोला खाकर चीख कर गिर पड़ा ।

हफ़जा भय से अपने सिर पर हवा में हिलते पत्तों की तरह कांप रहा था ।

"अल्लाहो अकबर ! या अली !" जोर जोर से नारे लगने लगे । भीड़ ने पटवारखाने को घेर लिया । हमलावरों ने मशालें जला लीं । भीड़ में कुछ पठान थे और कुछ खाकी वर्दी पहने सिपाही । पटवारखाने के भीतर से बच्चों, औरतों और मर्दों के चीखने-चिल्लाने की आवाजें आने लगीं । बन्द किवाड़ों पर बन्दूकों के कुन्दों के धमाके हो रहे थे ।

पटवारखाने के किवाड़ टूट गये । भीड़ कोठरियों में घुस पड़ी । इधर-

उधर से उठाया हुआ सामान बगल में दबाये और बन्दूकें संभाले पठान और सिपाही बदहोशी में इधर-उधर झपट रहे थे। इसके बाद पटवारी साहब और पटवारखाने की स्त्रियों के हाथ पीठ पीछे बाँध कर आंगन में लाया गया। धरती में गड़े रुपये का पता पूछने के लिये उन्हें पीटा गया।

हफ़ज़ा अंधेरे में पेड़ के तने से चिपका काँपता हुआ यह सब देख रहा था। वह मौन पुकार रहा था—'या खुदाया रहम !'

मर्दों और बूढ़ी औरतों को गोली मार देने के लिये मशालों की रोशनी में अखरोट के तने के पास लाकर खड़ा किया गया। हफ़ज़ा इन लोगों की पीठ पीछे ओट में छिपा काँप रहा था। मशालों की रोशनी में वह पेड़ के तने से सटा हुआ दिखाई दे गया।

एक पठान ने गाली देकर कहा—"एक बदमाश यहाँ छिपा है।"

दूसरे पठान ने उसे बैठे-बैठे ही समाप्त कर देने के लिये बन्दूक की नाली उसकी ओर सीधी की।

पहला पठान अपने साथी को रोक कर बोला—"इसके तो पाँव भी बंधे हैं।" उसने हफ़ज़ा से पूछा, 'तू कौन... ? काफिर... ? मुसलामीन ?"

हफ़ज़ा के मुँह का नीचे लटका जबड़ा भय से बेबस काँप रहा था। बड़ी कठिनता से हिचकी लेते हुये उसने उत्तर दिया—"मुसलमान।"

"तेरी मुश्कें किसने बाँधी ?" उससे पूछा गया।

हफ़ज़ा ने हकलाते हुये जवाब दिया कि उसकी मुश्कें पटवारी साहब ने बंधवाई थी, वह राजा का क़ैदी है।

भीड़ में से एक आदमी छुरा लेकर उसकी ओर बढ़ा। हफ़ज़ा की आँखें मुँद गयीं।

हफ़ज़ा पीठ पर लात पड़ने से पेड़ के तने से परे जा गिरा। उसे मालूम हुआ कि उसके हाथों और पाँवों की रस्सियाँ कट चुकी थीं।

हफ़ज़ा को बाँह से खींच कर खड़ा कर दिया गया और एक जलती हुई मशाल उसके हाथ में थमा दी गयी।

हफ़ज़ा भय से काँपता हुआ, मन ही मन—खुदाया रहम खुदाया......कहता हुआ मशाल लिये खड़ा रहा। पटवारी साहब और दूसरे मर्दों को अखरोट के पेड़ के नीचे एक साथ खड़े कर गोली मार दी गयी। हफ़ज़ा की आँखें बन्द हो गयीं। वह हवा से थर्राती बेंत की डाल की तरह अपनी जगह खड़ा—"खुदाया तौबा '...तौबा कहता रहा।

भीड़ के पठान और सिपाही पटवारखाने की कोठरियों में, कुछ बरामदे में और कुछ अखरोट के पेड़ के नीचे बैठ गये। उनकी बंदूकें गोद में, या लेटे हुओं के सिरहाने या हाथ की पहुंच के भीतर टिकी थीं।

पटवारी साहब की भेड़ जिबह कर दी गयी। मांस के बड़े-बड़े टुकड़े भूने जाने लगे और रोटियां सिकने लगीं। हफ़ज़ा बुझती हुई मशाल हाथ में लिये खड़ा रहा। मशाल समाप्त हो गई तब भी हफ़ज़ा बुझी हुई मशाल थामे वैसे ही खड़ा रहा।

खा-पीकर भीड़ के अधिकांश लोग सो गये। कुछ लोग आग के पास बैठे जागते रहे। हफ़ज़ा अपनी फिरन में सिमटा हुआ मशाल थामे पठानों से डरता खड़ा रहा।

सुबह कुछ और लोग आ गये। उनके साथ पांच लदे हुये खच्चर और दस—हफ़ज़ा जैसे कश्मीरी-किसान पीठ पर बोझ लादे हुये थे।

दिन निकलने पर अधिकांश पठान अपनी बन्दूकें कंधों पर लिये पास-पास के गांवों की ओर चले गये। कुछ लोग बन्दूकें घुटनों से टिकाये बैठ कर चौकसी करने लगे। बोझ ढोने वाले कश्मीरी किसानों को आटा मांड़ कर रोटी सेकने के काम में लगा दिया गया। हफ़ज़ा को व्यर्थ में बुझी मशाल लिये खड़े रहने के कारण गाली देकर पटवारखाने से आधा फलांग नीचे बहते नाले से पानी लाने का काम दिया गया। वह लोहे की गागर कंधे पर रखे, खुदाया! खुदाया! जपता पानी ढोने लगा। दोपहर बाद पठानों के खा-पी लेने पर उसे भी रोटी मिली। उसने भर पेट खाया।

दिन रहते पठानों की एक टोली पटवारखाने से पूरब की ओर चल दी। दूसरी टोली अगले दिन खा-पीकर सुबह चली। इस टोली के साथ पटवारखाने से दो खच्चर और मिला कर लदे हुये सात खच्चर और बारह काश्मीरी किसान कुली चले। इनमें हफ़ज़ा भी था। तीन पठान खच्चरों को और दो पठान कुलियों को हांकते चल रहे थे।

राह में जो झोपड़ियां और दुकानें मिलीं, लूटी हुई और उजड़ी हुई थीं। गांव जले हुए थे। आगे जाने वाली टोली पहले से बहुत से लोगों को गोली मार कर, लूट-पाट कर साफ किये रहती। जवान औरतें और लड़कियां प्रायः किसी पेड़ के नीचे इकट्ठी करके बैठाई हुई मिलतीं। उनके चेहरे आंसुओं से भीगे हुए और सहमे हुए दिखाई देते—मुश्की जैसे। हफ़ज़ा तोबा कह कर आंखें मूंद लेता और फिर मन ही मन कहता रहता, खुदाया!

तीसरे दिन बोझ ढोने वाली खच्चरों की संख्या बारह और कुलियों की संख्या तीस हो गयी। पटवारखाने से दो और दूसरे तीन गावों से समेटी हुई बारह औरतें भी साथ थीं। कुलियों पर बोझ इतना था कि उनसे चला न जाता था। हफ़ज़ा की पीठ पर बड़ा बोझ नहीं, कंधे पर छोटी मशीनगन थी लेकिन उसे सब से आगे चलने वाली टोली के साथ, दौड़-भाग कर आगे-आगे चलना पड़ रहा था।

चौथे दिन पूरब की ओर से मुकाबिले में गोली चलने की आवाजें आने लगी। मुकाबिला करने की तय्यारी में भीड़ रुक गयी। बीस पठान, दस लदी हुई खच्चरों, तीस बोझ उठाये कुलियों और औरतों को लेकर दूसरी राह चले गये। दो खच्चरें गोली बारूद ढोने के लिये और दो कुली मशीनगनें उठाने के लिये लड़ने वाली भीड़ के साथ रख लिये। हफ़ज़ा इन्हीं दो में से था।

अब लड़ाकू भीड़ राह छोड़कर बगल से घूम कर आगे बढ़ने लगी। यह लोग पांच-पांच दस-दस की टोलियों में छिप-छिप कर आगे बढ़ रहे थे। पूरब से सुनाई देने वाली गोलियों की आवाजें जोर से सुनाई दे रही थीं। कभी-कभी इधर से भी दो-चार गोलियां चल जातीं। एक बार हफ़ज़ा के साथ पठानों और सिपाहियों की टोली एक टीले के पीछे छिप गयी। हफ़ज़ा के कंधे से मशीन उतार कर एक टीले की आड़ से रख कर सामने की पहाड़ी पर गोलियां चलाई गयीं। मशीन में से बन्दूक की गोलियां ऐसे छूट रही थीं कि लगातार बादल गरज रहा हो। पल भर में सैकड़ों गोलियां। हफ़ज़ा के कान बहरे हो गये। इसके बाद जब फिर मशीन हफ़ज़ा के कंधे पर रखी गयी तो भय से उसकी पिंडलियां कांप रही थीं। उसका कदम जल्दी न उठने पर उस की पीठ पर बन्दूक का कुन्दा आ पड़ता। बन्दूक के कुन्दे और गालों पर ही बस न थी। किसी भी समय छुरा भी तो उसकी पीठ या बगल में घुस सकता था। हफ़ज़ा के बाईं ओर चलता पठान उसकी पीठ पर छुरा छुआ कर यह बात समझा चुका था।

हफ़ज़ा को बीचोबीच लिये पठान और सिपाही दो टीलों के बीच के एक छोटे दर्रे से छुपके-छुपके जा रहे थे। सहसा बीसियों गोलियां दायें-बायें से आकर, बायें-दायें चट्टानों पर टकरा गयी और दो पठान गिर पड़े।

दोनों ओर की चट्टानों पर खड़े आदमियों के पीछे से बहुत से सिपाही पठानों पर ऐसे आ गिरे जैसे मुर्गी के बच्चों के झुण्ड पर चील आ पड़ती है। हफ़ज़ा धमाके से मशीन पीठ पर लिये ही गिर पड़ा और मशीन के नीचे दब गया।

हफज़ा को दोनों ओर से बगलों के नीचे हाथ डाल, खींच कर खड़ा किया। उसकी पीठ पर से मशीनगन का बोझ हट चुका था। यह सिपाही भी वैसे ही थे पर दूसरी तरह की टोपियां पहने हुए थे।

हफ़ज़ा के हाथ फिर पीठ पीछे बाँध दिये गये। नये सिपाही पठानों, उनके साथी सिपाहियों और हफ़ज़ा को हांक कर ले चले। इतनी घटनायें, जिनकी कल्पना भी हफ़ज़ा ने कभी न की थी, लगातार होती जाने से हफ़ज़ा अपने खेतों के लगान की बात भूल कर यही सोचने लगा था—सिपाही लोग, बड़े लोग एक दूसरे से लड़ रहे हैं। वह तो गरीब है, किसी से नहीं लड़ता। फिर उसे क्यों मारा जा रहा है?

कुछ दूर पगडंडी पर चलने के बाद सिपाही कैदियों को लेकर सड़क पर पहुँचे। हफ़ज़ा हैरान था कि सिपाही लोग सब लोगों को लेकर पहिये लगे छोटे से मकान में बैठ गये। मकान जोर से गरज कर भागने लगा।

हफ़ज़ा सोचता रहा—इसी को मोटर कहते होंगे।

हफ़ज़ा को एक डेरे में ले जाया गया। सब ओर वर्दी पहने सिपाही थे। सब ओर बन्दूकें और संगीनें। उससे कश्मीरी बोली में प्रश्न पूछे गये। वह इतना कम जानता था कि सिपाहियों को सन्देह हुआ कि वह हमलावरों का साथी है, भेद छिपा रहा है। हफ़ज़ा को दूसरे कैदियों के साथ संगीनों के पहरे में श्रीनगर भेज दिया गया।

श्रीनगर के कैदी कैम्प में फिर हफ़ज़ा की तहकीकात हुई। उसने फिर अपनी बात दोहराई—खुदाया लगान न दे सकने के कारण वह राजा का कैदी हो गया था अब खुदाया फिर राजा का कैदी है। खुदाया।

नेशनल कान्फ्रेन्स के वालंटियर ने उसे समझाया—"अगर वह अपने मुल्क पर हमला करने वाले दुश्मन से लड़ेगा तो उसे कैद से रिहा कर दिया जायगा।"

हफ़ज़ा ने इनकार में सिर हिला दिया और बोला—"क्या लड़ेगा; खुदाया गरीब आदमी है। गरीब किसान किसी से नहीं लड़ता। पठान के पास बन्दूक है।"

"तू लड़ेगा तो तुझे भी बन्दूक दी जायगी" वालंटियर ने आश्वासन दिया।

हफ़ज़ा ने फिर सिर हिलाकर इन्कार किया—"नहीं मालिक, हम किसी से नहीं लड़ेगा, गरीब आदमी है। हमको बन्दूक से बहुत डर लगता है।"

वालंटियर को क्रोध आ गया, वह हफ़ज़ा के सामने पांव पटक कर

बोला—"तू क्यों नहीं लड़ेगा ? तू अपना मुल्क छीनने वाले दुश्मन से क्यों नहीं लड़ेगा ? तू कश्मीरी नहीं है ?"

हफ़ज़ा ने स्वीकार किया वह कश्मीरी है।

"तो फिर तू अपने कश्मीर के लिये, अपनी धरती के लिये क्यों नहीं लड़ेगा ?" वालटियर की आँखें सुर्ख हो गयी।

"खुदाया, कश्मीर राजा का है, धरती राजा की है ?" सहमते हुये हफ़ज़ा ने उत्तर दिया।

"राजा भाग गया ! अब कश्मीर राजा का नहीं है। धरती राजा की नहीं है। धरती तेरी अपनी है, तू अपनी धरती के लिये नहीं लड़ेगा ?" वालटियर ने फिर पूछा।

हफ़ज़ा की सिकुड़ी हुई गर्दन तन गयी और बुझी हुई आँखें चमक उठीं—"लड़ेंगा हुजूर ! लड़ेंगा जरूर !" वह बोल उठा।

वालटियर ने करुणा से उसकी ओर देखा और निराश स्वर में कहा—"तू क्या लड़ेगा ?"' तू तो बन्दूक से डरता है।"

हफ़ज़ा उत्साह में उठकर खड़ा हो गया। उसने हाथ उठा कर ऊँचे स्वर में विरोध किया—"नहीं डरेंगा हुजूर, बन्दूक भी पकड़ेंगा। लड़ेंगा। लकड़ी से लड़ेंगा। पत्थर से लड़ेंगा।"

वालटियर को प्रसन्नता और उत्साह अनुभव हुआ। वह समझ गया—कश्मीरी डरपोक कहकर क्यों बदनाम था ?.........वह लड़ता किसके लिये ? उसके पास लड़ने के लिये था क्या.........?

धर्म रक्षा

प्रोफेसर ब्रह्मव्रत ने जिन वर्षों में एम० एस-सी० पास किया था, ऐसी सफलता प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत कम थी। यदि वे चाहते तो गवर्मेंट कालिज में प्रोफेसरी या कोई दूसरी ऊंची नौकरी मिल सकती थी परन्तु यह बात उन्होंने सोची भी नहीं।

ब्रह्मव्रत वेदज्ञान के प्रचार द्वारा विश्व के कल्याण का व्रत लेकर 'वेद प्रचार सभा' के आजीवन-सदस्य बन गये थे। उन्होंने जीवन भर पचहत्तर रुपये मासिक की जीविका पर देश को वेदज्ञान और शिक्षा देने का कठिन व्रत ले लिया था।

ब्रह्मव्रत ने पश्चिमी रसायन विज्ञान का अध्ययन तो किया था परन्तु इस शिक्षा के भ्रम पैदा करने वाले प्रभाव से वे बचे रहे थे। उनका अखण्ड विश्वास था कि वे सब पदार्थ, जो सत्य विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल ईश्वर है। सब सत्य विद्याओं का मूल और आदि ज्ञान का एक-मात्र भंडार वेद है। पश्चिमी भौतिक ज्ञान के आधार पर संसार की उन्नति की आशा उन्हें एक भ्रमपूर्ण अहंकार-मात्र जान पड़ता था, ऐसे ही जैसे कोई चूहा सोंठ की एक गांठ चुराकर समझे कि उसने पंसारी की दूकान पा ली है।

ब्रह्मव्रत प्रायः प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन की बात दोहराया करते थे— समुद्र से किनारे पर बहकर आ गयी एक सुन्दर चमकदार कौड़ी को ही उठा कर हम फूले नहीं समाते। हम नहीं जानते कि ईश्वर की अनादि और अनन्त शक्तियों के सागर में ऐसे कितने अनमोल रत्न भरे पड़े हैं। इन अनमोल रत्नों को हम उसकी कृपा और ज्ञान के बिना नहीं पा सकते। प्रोफेसर ब्रह्मव्रत पश्चिमी विज्ञान का खोखलापन और उसकी तुलना में वैदिक ज्ञान की ठोस [illegible]त, कार्य-कारण परंपरा और नित्यता प्रमाणित करते थे। उनके विश्वास

से देश की विदेशी गुलामी, दरिद्रता तथा दैन्य भी भारत के वेदज्ञान से विमुख हो जाने का ही परिणाम था अन्यथा जिस समय यह देश ब्रह्मचर्य के बल से वेदज्ञान का स्वामी था—

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवः ।"

(इस देश में उत्पन्न होने वाले संसार के श्रेष्ठ शिक्षक हैं। संसार के मनुष्य इस देश में जन्मे लोगों से अपने धर्म और चरित्र की शिक्षा पाते हैं।) ब्रह्मदत्त प्रायः ही प्राचीन भारत में ब्रह्मचर्य के बल प्राप्त होने वाले ज्ञान के प्रमाण में इस श्लोक का उद्धरण अपने व्याख्यानों में दिया करते थे।

प्रोफेसर ब्रह्मदत्त के जन्म समय की राशि के विचार से बालक का नाम सुझाने वाला पुरोहित कुछ शृंगारी स्वभाव का रहा होगा। बालक का पहला नाम रखा गया था, राधारमण।

राधारमण ने लाहौर के 'एंग्लोवैदिक' कालिज में पढ़ते समय अब्रह्मचर्य से विनाश और ब्रह्मचर्य से शक्ति के मार्ग को पहचाना। जीवन से विलासिता और अब्रह्मचर्य के सब चिन्ह दूर कर देने के साथ-साथ उन्होंने माला राधा के विलास का संकेत करने वाले अश्लील नाम को भी त्याग दिया और ब्रह्मदत्त नाम ग्रहण कर लिया। उन्होंने बोर्डिंग के अपने कमरे की दीवार पर मोटे अक्षरों में लिख दिया था—

"ओ३म्"
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत"
"ब्रह्मचर्य ही जीवन है।"

कालेज के दूसरे विद्यार्थियों की तरह ब्रह्मदत्त के सिर पर तेल और कंघे से सवारी हुई जुल्फें न रहती थीं। मशीन से बराबर छंटे बालों से मजबूत गांठ से कड़ी शिखा ही दिखाई देती थी। बन्द गले का कोट, न तंग न खुले पहुंचे का पायजामा और देसी जूता। उनके इस वेश में एम० एस-सी० तक परिवर्तन न आया और प्रोफेसर बन जाने पर भी नहीं आया। नवयुवकों के विलासिता के गर्त में परेशान माता-पिता प्रोफेसर ब्रह्मदत्त को आदर्श व उनका उदाहरण रूप से अनुकरणीय बता कर करते थे।

ब्रह्मचर्य का महत्व न समझने वाले, कुसंस्कारों में फंसे ब्रह्मव्रत के माता-पिता ने जहाँ और भूलें की थीं वहाँ एंट्रेंस में पढ़ते समय ही लड़के का विवाह भी कर दिया था। ब्रह्मचर्य का महत्व समझने पर ब्रह्मव्रत ने निश्चय किया कि कालिज की छुट्टियों के समय जब वे अपने देहाती कसबे के घर में जायें, उनकी नवयुवति पत्नि अपने नैहर चली जाया करे।

मूक नववधू पति के इस सद्‌विचार का अभिप्राय और महत्व न समझ पाने पर भी कुछ न कह सकी परन्तु स्वयं ब्रह्मव्रत के माता-पिता और वधू के माता-पिता को शहर की हवा से बिगड़ते लड़के का यह अत्याचार स्वीकार न हुआ। पड़ोस और बिरादरी के लोग भी इसके अनेक अर्थ लगाने लगे—लड़के को बहू पसन्द नहीं है या शहर में वह दूसरा ब्याह करेगा आदि आदि।

ब्रह्मव्रत को कुसंस्कारों के समर्थक बहुमत के सम्मुख झुक जाना पड़ा। फिर जैसा कि शास्त्र में लिखा है, इसका परिणाम भी हुआ। ब्रह्मव्रत अभी बी० एस० सी० में ही थे और कालिज की पत्रिका में 'ब्रह्मचर्य रक्षा' पर निबन्ध लिख रहे थे, घर से आये पत्र में उन्हें एक सुन्दर कन्या के पिता बन जाने का समाचार मिल गया।

सन्तान के जन्म की खबर से ब्रह्मव्रत को अपना व्रत खण्डित हो जाने के प्रमाण के प्रति क्षोभ और ग्लानि ही हुई। इस अपराध का प्रायश्चित करने के लिये उन्होंने बारह वर्ष तक पत्नि से सहवास न करने का निश्चय कर लिया : ईश्वर ने अपना सँदेश संसार में फैलाने के लिये उन्हें जो शक्ति दी है, वे उसका नाश नहीं करेंगे।

× × ×

लाहौर पंजाब में पश्चिमी शिक्षा का केन्द्र था। प्रोफेसर ब्रह्मव्रत का विश्वास था कि उस नगर के विलास और व्यसन के वातावरण में ब्रह्मचर्य के आदर्श का पालन सम्भव नहीं था। उन्होंने व्यास नदी के तट पर बसे एक छोटे कस्बे में 'एंग्लो वैदिक हाईस्कूल' की अध्यक्षता स्वीकार कर ली थी। उन्हें विश्वास था कि नगरों से दूर अपेक्षाकृत सादे और स्वस्थ वातावरण में पले लड़कों को उचित वैदिक शिक्षा देकर ऋषियों द्वारा दिये वैदिक ज्ञान का प्रचार विश्व में करने के योग्य बना सकेंगे। आर्यों के पवित्र उद्देश्य "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" (सकल विश्व को आर्य बनाओ) की पूर्ति जुल्फों में सुगन्धित तेल लगा-लगाकर और सिगरेट पी-पीकर पीले पड़ जाने वाले, प्रकृति

से विमुख शहर के नवयुवकों में नहीं हो सकती। इस उद्देश्य में प्रकृति माता की गोद में शक्ति पाने वाले, स्वस्थ, अब्रह्मचर्य तथा व्यसनों के घातक प्रभाव से बचे हुए ग्रामीण युवक ही सफल हो सकते हैं।

प्रोफेसर ब्रह्मव्रत ने कस्बे से दो मील दूर, नदी किनारे बने 'एग्लोवैदिक' स्कूल के समीप एक 'ब्रह्मचारी बोर्डिंग' की स्थापना की थी। इस बोर्डिंग के छात्रों को शहर और बाजार जाने की आज्ञा नहीं थी। बोर्डिंग के चारों ओर ऊंची दीवार खिंचवा कर उस पर कांच के टुकड़े लगवा दिये गये थे। लड़कों के भोजन-वस्त्र तथा उपयोग की वस्तुयें सब कुछ ब्रह्मचर्य के नियमों के अनुसार ही होता था। ब्रह्मव्रत स्वयं कड़ी आंख रखते थे कि किसी भी व्यसनी प्रभाव को वहां स्थान न मिले।

ब्रह्मव्रत प्रति सन्ध्या छात्रों को उपदेश देते थे—"ईश्वर ने यह सुन्दर शरीर और स्वास्थ्य हमें अपने आदेशों और नियमों का पालन करने के लिये दिये हैं। ब्रह्मचर्य से शरीर की शक्ति और वुद्धि बढ़ती है। अब्रह्मचर्य से शरीर और बुद्धि का नाश होता है।" वे ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच, स्नान, व्यायाम आदि का उपदेश देते। वे समझाते थे कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये व्यायाम और शीतल जल से स्नान आवश्यक है। कोई कुविचार मन में आते ही गायत्री मन्त्र का पाठ करना चाहिये। सिगरेट, खटाई, मिर्च, अधिक मीठा ब्रह्मचर्य के लिये हानिकारक है। अश्लील गजलें और चित्र ब्रह्मचर्य के विरोधी हैं। ऐसे अपराध होने पर वे छात्रों को बेंत से पीट कर दण्ड देते और उपदेश देते कि ऐसा करना ब्रह्मचर्य का नाश है, ब्रह्मचर्य का नाश आत्महत्या है।

ब्रह्मचर्य की महिमा और अब्रह्मचर्य की निन्दा बार-बार सुनने से किशोरों में प्रायः कौतूहल जाग उठता कि अब्रह्मचर्य क्या है, अब्रह्मचर्य से क्या होता है? उन्हें खटाई-मिर्च खाने की और बहुत ठंडे-जल के स्नान से बचने की इच्छा होती और इस प्रकार ब्रह्मचर्य तोड़ने के साहस से संतोष होता। अधिक जानने वाले दूसरे लड़कों को अभिमान से बताते—असली अब्रह्मचर्य लड़कियों और लड़कों में, स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध की बुरी बातों से होता है।

पहले से कुसंस्कार पाये हुये किशोरों ने बोर्डिंग में दो-तीन बार अब्रह्मचर्य के कुचरित्र किये भी। प्रोफेसर महाशय ने अन्य विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये अपराधियों को बेंत मारकर दंड दिया और बोर्डिंग से निकाल दिया था। दूसरे छात्र कई दिन तक इन अपराधों के विषय में [illegible]
करते रहे थे।

प्रोफेसर ब्रह्मव्रत समाज और विश्व के कल्याण के लिये अज्ञान, कुसंस्कारों और व्यसनों से लड़ रहे थे। वे स्वयं कठिन संयम से ब्रह्मचर्य का पालन करते थे, अपने छात्रों से व्रत का पालन कराते थे और संसार के कल्याण के लिये भी उपदेश देते थे—"जो सात्विक आनन्द और शान्ति संयम और ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति उपार्जन करके भगवान के मार्ग को पूरा करने में है, वह व्यसनों द्वारा भगवान के दिये शरीर को नष्ट करने में कहां मिल सकती है। व्यसनों का आनंद मिर्च के स्वाद की भांति है। प्रकृति हमें उससे दूर रहने का उपदेश देती है। हमें मिर्च से कष्ट होता है परन्तु हम आत्मनाश का हठ करके उसका अभ्यास कर लेते हैं। इसी प्रकार कोई भी कुकर्म करते समय भगवान हमारे मन में लज्जा और संकोच उत्पन्न करते हैं। यह हमें भगवान द्वारा चेतावनी होती है। हमें ईश्वर की चेतावनी को समझना चाहिये। आनन्द, शक्ति और शान्ति ईश्वर की आज्ञा के पालन में है।"

प्रोफेसर ब्रह्मव्रत के उपदेशों और आचरण की भी समाज में बहुत प्रतिष्ठा थी।

× × ×

प्रोफेसर ब्रह्मव्रत बारह वर्ष के ब्रह्मचर्य व्रत पर दृढ़ थे परन्तु जब उनकी पुत्री ने छठे वर्ष में पांव रखा उन्हें उसकी शिक्षा की चिन्ता हुई। पुत्री का नाम उन्होंने रखा था—ज्ञानवती। पुत्री और उसकी माता को अपने साथ रखने में छः वर्ष के शेष ब्रह्मचर्य के लिये आशंका थी।

ज्ञानमय ईश्वर ने अपने अनन्त और अज्ञेय विधान से कठिन समस्या में ब्रह्मव्रत की सहायता की। ज्ञानवती की माता के लिये इस पृथ्वी पर निर्दिष्ट कार्य और समय समाप्त हो गया था। वह पति के महान उद्देश्य के मार्ग को निर्बाध कर देने के लिये परम पिता परमात्मा की गोद में लौट गयी।

ब्रह्मव्रत ज्ञानवती को दादा-दादी के कुसंस्कार पूर्ण और लाड़ भरे वातावरण से ले आये। मां और दादी ने लड़की की छोटी-छोटी कलाइयों पर सोने के कंगन पहना दिये थे। उसके छोटे-छोटे हाथों में मेंहदी रची हुई थी और मैल से भरे केश गूंथे हुये थे।

पिता ने ज्ञानवती के शरीर पर से वह सब फूहड़पन दुलार से फुसला कर और कुछ अनुशासन से दूर कर दिया। उसके केश लड़कों की तरह कटवा दिये। नमस्ते कहना सिखाया और गायत्री मन्त्र कण्ठ करा दिया। ईश्वर-भक्ति के

कुछ खाने को दिया दिये। वह उसे 'बेटा ज्ञान' कह कर पुकारते थे। अतिथियों के सामने वह शुद्ध उच्चारण से गायत्री मन्त्र सुनाती थी।

पिता प्रश्न करते—"तुम क्या बनोगी?"

पुत्री उत्तर देती—"ब्रह्मचारिणी।"

भोजन के पश्चात् या किसी समय डकार या हिचकी आ जाने पर लड़की के मुख से निकल आता—ओ३म्।

पत्नि के अभाव में बालिका के लिये घर पर समुचित प्रबन्ध में असुविधा देखकर प्रोफेसर साहब ने ज्ञान को ऋषि वचन के अनुसार कन्या गुरुकुल में दाखिल करा दिया था। बारह वर्ष के लिए ज्ञानवती के जीवन की सुव्यवस्था हो गयी थी। गुरुकुल में शिक्षा का अवकाश होने पर भी प्रोफेसर पुत्री को कुसंस्कारों से बचाने के लिये आश्रम से बाहर न लाते।

ज्ञानवती गुरुकुल में बारह वर्ष की शिक्षा पूर्ण कर चुकी थी। उसने संस्कृत और वैदिक साहित्य का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया था। वह 'महाभाष्य' और 'निरुक्त' की व्याख्या कर सकती थी। शरीर उसका गुरुकुल के कठिन जीवन से दुबला और रूखा जान पड़ता था परन्तु वह स्वस्थ थी। उपेक्षा से यौवन का भार उठाये वैराग्य सी दिखाई पड़ती थी। स्वयं को और संसार को पहचानने के यत्न में पराबोध सी दीखती थी।

ज्ञानवती को गुरुकुल से लौटे दो ही मास बीते थे। कोठियों के समीप ही उसके पिता के लिये भी मकान बनाया गया था। मकान में तीन कमरे थे। एक कमरे में पुस्तकों की आलमारियाँ और स्कूल के प्रबन्ध का दफ्तर था। एक कमरे में पिता के सोने के लिये लकड़ी का तख्त था। ज्ञानवती के आ जाने पर तुरंत तख्त तैयार न हो सकने के कारण दूसरे कमरे में एक चारपाई डाल दी गई थी। प्रोफेसर का नौकर मोतीराम रसोई में या बरामदे में ही सो रहता। मोतीराम लड़कपन से प्रोफेसर महाशय के यहाँ रहने के कारण हिन्दी पढ़ गया था। वह रामायण, महाभारत और दूसरी पुस्तकें पढ़ चुका था। इसके अतिरिक्त थी एक गाय, कमला। कमला का शुद्ध दूध पर्याप्त मात्रा में होता था तो मालिक और नौकर दोनों पीते थे। कम रह जाने पर केवल प्रोफेसर महाशय ही पी लेते।

जिस समय ज्ञानवती कमला के दूध में भाग लेने के लिये परिवार में सम्मिलित हुई, कमला प्रायः वर्ष भर दूध दे चुकी थी। उसका पुत्र 'बेटू' अनावश्यक होने और अधिक उपद्रव करने के कारण कहीं दूर भेज दिया जा

चुका था। कमला दूध कम ही दे रही थी। प्रोफेसर महाशय ने ज्ञानवती के तप से दुर्बल शरीर का ध्यान कर नौकर मोतीराम को बाहर से एक सेर दूध रोजाना और लाने की आज्ञा दे दी थी।

ज्ञानवती को दूध पीने से भी अधिक सन्तोष कमला की सेवा के अवसर से होता था। कमला उस घर में सदा से पुरुषों को ही देखती आई थी। घर में आई युवती नारी ज्ञानवती को अपना सवर्गीय पाकर पुलकित और स्फुरित हो जाती थी। अपनी बड़ी-बड़ी रसीली आंखें ज्ञानवती की ओर उठा कर, स्नेह से कोमल स्वर में गाय रम्भा कर पुकार लेती। ज्ञानवती को कमला के चिकने रोमपूर्ण शरीर पर हाथ फेरने में, उसके गले के कम्बल को हाथों से सहलाने में सुख मिलता। वह अपनी दोनों बांहें गैया के गले में डाल देती। सजीव त्वचा का ऐसा स्पर्श उसने कभी अनुभव न किया था। उसने मोतीराम से गैया दोहना सीख लिया। मोतीराम यद्यपि नौकर था परन्तु युवा पुरुष था; लड़कियों से भिन्न, जिसके साथ ज्ञानवती सदा रहती आयी थी।

ब्रह्मचर्याश्रम का समय पूरा कर चुकने के कारण नियमानुसार ज्ञानवती को खटाई और मिर्च खाने का अधिकार था। इन पदार्थों के स्वाद में उसकी रुचि भी थी। प्रोफेसर महाशय का भोजन ऐसे उत्तेजक पदार्थों से सदा शून्य रहता था। मोतीराम अलग से उनका सेवन करता था। ज्ञानवती की रुचि उस ओर देखकर उसने कृपणता नहीं की; किसी को संतुष्ट कर देने में स्वयं भी तो संतोष होता है।

मोतीराम ने हिन्दी पढ़ना और कुछ लिखना भी सीख लिया था। वह कभी-कभी आर्य समाज मन्दिर में रहने वाले पण्डित जी से अथवा स्कूल के मास्टरों से एकाध पुस्तक अपना समय काटने और पढ़ने का आनन्द पाने के लिये मांग लाता था। इनमें 'स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र' 'हनुमान जी का जीवन चरित्र' के अतिरिक्त 'चन्द्रकान्ता सन्तति' अथवा दूसरे सामाजिक और जासूसी उपन्यास रहते थे। घर में अकेली ज्ञानवती के लिये समय बिताने के लिये इन पुस्तकों को पढ़ने के अतिरिक्त दूसरा उपाय न था। इन पुस्तकों से ज्ञानवती को ऐसा ही संतोष होता जैसा निरन्तर पथ्य सेवन के बाद चिकित्सक द्वारा निषिद्ध चटपटे भोजन से होता है। पिता की पुस्तकों में से वह वेदों और उपनिषदों के भाष्यों और वेद प्रचार की वार्षिक रिपोर्टों में निरंतर रुचि हीं ले सकती थी।

प्रोफेसर महाशय ने जिस समय छः वर्ष की ज्ञान को शिक्षा के लिये गुरुकुल

में दिया था वह समाप्त और ज्ञानवती मन बोलने वाली निर्जीवा-मात्र थी। गुरुकुल से स्नातक बनकर आयु पूर्ण कर लौटी ज्ञानवती उनकी पुत्री होने पर भी वस्तुतः थी। बिल्कुल वैसी ही दुबली वैसी अवस्था भी पूर्व ब्रह्मचर्य के शासित ने पाई समय आने पर आने पर ज्ञानवती की मां दुखी थी। जिससे सम्भव पालन के कारण उन्हें बारह वर्ष ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण करना पड़ा था।

ज्ञानवती को देखकर प्रोफेसर महाशय के मन में ज्ञान की मां की स्मृति जाग उठी थी। वैसी रूप-रंग में ठाठ मां जैसी ही थी परन्तु व्यवहार में बहुत भिन्न। मां सर्वोपयोगी, धीर सामान्य थी। बेटी शिक्षा के अधिकार से उग्र और गंभीर। स्त्री की मर्यादा में स्वभावतः प्रोफेसर ज्ञानवती से संकोच अनुभव करते थे। उसकी ओर से दृष्टि बचाते रहते।

प्रोफेसर महाशय के ब्रह्मचर्य व्रत का मार्ग था—यथा-सम्भव स्त्रियों के सम्पर्क में न आना और सम्पर्क का अवसर आ जाने पर उन्हें माता अथवा बहिन कहकर सम्बोधन करना। स्वयं उनकी आयु अभी अड़तीस वर्ष की ही थी। ज्ञानवती को वे माता या बहिन न पुकार सकते थे और बेटी कहने से अनुभव होता कि वे सहसा बूढ़े होने का दम्भ कर रहे हैं। नियमित जीवन के फलस्वरूप उनके सिर के केश अभी काले ही थे।

पूर्ण युवती पुत्री के गुरुकुल से आने पर अनेक मित्रों ने उनके विवाह योग्य हो जाने की ओर ध्यान दिलाया था। प्रोफेसर महाशय स्वयं पुत्री के लिये योग्य वर की चिन्ता में थे? उन्होंने गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त स्नातकों के विषय में सोचा और युवक योग्य अध्यापकों के विषय में भी सोचा। वासना और गृहस्थ के वातावरण से अछूती युवा पुत्री से उसके विवाह के विषय में बात करने का उन्हें साहस न हुआ।

प्रोफेसर महाशय ने ज्ञानवती के ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये वेद-ज्ञान के प्रचार का कार्य करते रहने की बात भी सोची। ऐसे समय यह भी विचार आया कि ज्ञानवती के स्थान पर यदि पुत्र सन्तान होती तो उनके जीवन की समस्या कितनी सरल होती। ऐसा विचार मन में आने पर प्रोफेसर महाशय ने अपने आपको निर्विकार, सदा सत्य और पूर्ण ब्रह्म के न्याय और विधान पर सन्देह करने के लिये धिक्कारा। परमेश्वर ने नर और नारी को समान रूप से अपने ज्ञान का प्रकाश करने के लिये रचा है। नर और नारी दोनों में ब्रह्म के ज्ञान की पूर्णता है। अशोक के पुत्र और पुत्री महेन्द्र और संघमित्रा दोनों धर्म प्रचार के लिये गये थे।

बार-बार नारी का ध्यान आने से प्रोफेसर महाशय को स्वयं अपने ऊपर क्रोध आया। उन्होंने अपने मन को तर्क से समझाया :—कुविचार का दमन ही पुरुषार्थ है। स्त्री की चिन्ता वासना है। यह ज्ञान का सबसे बड़ा शत्रु है। वासना के आकर्षण के प्रति उपेक्षा भय का कारण है।

युवती पुत्री के घर में अकेली रहते समय उन्होंने बहुत दिन से भुलाई अपनी एक वृद्धा बुआ को घर में बुला कर रख लेने की बात सोची। अपने घर पर युवा विद्यार्थियों और अध्यापकों का अधिक आना-जाना न होने देने के लिये वे अधिकांश समय स्वयं भी स्कूल के दफ्तर में ही रहने लगे।

× × ×

लाहौर में रविवार के दिन मध्यान्ह में 'वेद प्रचार सभा' की बैठक थी। प्रोफेसर महाशय का वहाँ जाना आवश्यक था। वे प्रातः गाड़ी से लाहौर चले गये थे।

दोपहर का समय था। मोतीराम सौदा लेने बाजार गया था। ज्ञानवती अपनी चारपाई पर लेटी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। मकान के पिछवाड़े से गैया कमला के जोर से रम्भाने का स्वर सुनाई दिया। ज्ञानवती का मन पुस्तक में रमा था। गैया की रम्भाहट बार-बार सुनकर ज्ञानवती को गैया पर दया और मोतीराम पर खीझ आयी—बहुत दुष्ट है, इसने गैया को भूसा नहीं दिया होगा।

ज्ञानवती पुस्तक छोड़कर उठी और एक टोकरी भूसा लेकर उसने गैया की नांद में छोड़ दिया। कमला ने भूसे की ओर नहीं देखा। वह और भी व्याकुलता से रम्भा उठी।

ज्ञानवती चिन्ता से कमला की ओर देख रही थी। उसने अनुमान किया और एक बाल्टी जल लाकर गैया के सामने रख दिया। वह कमला को पुचकारने लगी।

कमला ने जल की ओर ध्यान दिया और जोर से सिर हिलाकर रम्भाने लगी। गैया व्याकुलता में खूंटे का चक्कर लगा रही थी और रस्सी तोड़ देना चाहती थी। ज्ञानवती उसकी व्यथा से दुखी होकर पुचकार रही थी और पूछ रही थी—"कमला क्या है, क्या हुआ ?.........क्या चाहती है ?"

मोतीराम लौट आया। ज्ञानवती ने दुखी स्वर में उसे कमला की अवस्था सुनाई। गया अब भी व्याकुलता से रस्सी तुड़ा रही थी। मोतीराम ने गैया

को देखा और बेपरवाही से बोला—"गैया बाहर जायगी। बीबी जी, एक रुपया दो!"

"कहां?" ज्ञानवती ने चिन्ता से पूछा, "पशु-अस्पताल?"

"सांड के पास जायगी" मोतीराम ज्ञानवती के अज्ञान पर हंस दिया।

"हाय क्यों?" ज्ञानवती ने विस्मय का गहरा सांस लिया।

"सांड के पास जाती है न गैया।"

"क्या बात है?" ज्ञानवती ने फिर आग्रह से पूछा।

यह समस्या गुरुकुल में कभी उसके सामने न आयी थी। किसी पुस्तक में इस विषय में कुछ नहीं पढ़ा।

"आप रुपया दीजिये।"

प्रोफेसर महाशय मोतीराम से पैसे-पैसे का हिसाब पूछते थे। ज्ञानवती ने भी पूछा रुपये का क्या होगा।

"सांड वाला लेता है।"

"किस लिये?"

"गैया नयी होगी, ठीक हो जायगी।"

"कैसे नयी होती है?" फिर ज्ञानवती ने आग्रह किया।

"लौट कर बताऊंगा।"

ज्ञानवती ने तिजोरी की आलमारी से निकालकर पांच रुपये का नोट दे दिया। मोतीराम गैया को रस्सी से थाम कर ले गया।

ज्ञानवती चिन्ता से कभी कमरों का चक्कर काटती, कभी चारपाई पर लेट जाती। गैया के दुख की चिन्ता से उसका मन भारी हो गया था।

सूर्य डूबने के समय मोतीराम गैया को लौटा लाया। कमला बिलकुल शान्त थी।

कमला को देखकर ही ज्ञानवती ने पूछा—"क्या बात थी बताओ!"

मोतीराम मुस्कराया—"तुम नहीं जानती, गैया सांड के पास जाती है"

"हाय" चिन्ता से आंखें फैलाये सांस रोक कर ज्ञानवती ने पूछा, "सांड ने बेचारी कमला को मारा तो नहीं? क्या हुआ बताओ सच-सच?"

मोतीराम ऐसी बात से कतरा जाने के लिये रसोई की ओर चला जाना चाहता था परन्तु ज्ञानवती हठ कर रही थी। इस हठ से मोतीराम, उत्तेजित हो उठा। उसकी आंखें गुलाबी होकर जबान लड़खड़ाने लगी। उसने कह दिया—"अरे, जैसे मर्द-औरत करते हैं।"

"असूर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृता,
तांस्ते प्रीत्याभि गच्छन्ति येकेच आत्महनो जनाः ।"

(आत्महत्या करने वाले तो सूर्य के प्रकाश से शून्य नरक लोक में जाते हैं)

प्रोफेसर ने विचार किया—पाप से पाप नहीं धुल सकता । पाप का अन्त प्रायश्चित और तप से ही हो सकता है ।

नदी के पुल पर वायु अधिक शीतल था । प्रोफ़ेसर बैठ कर सोचने लगे—भ्रम के एक क्षण में पथभ्रष्ट हो जाने से जीवन के उद्देश्य को, परमात्मा के कार्य को क्यों छोड़ दूं ? स्त्री का संग कर्तव्य का शत्रु है । यह परिस्थितियों का दोष था । मैं कल ही पूर्ण सन्यास ग्रहण करूं……या जीवन में गृहस्थ की आवश्यकता को पूर्ण करता हुआ अपना काम करूं ?………नहीं यह मेरे सम्मान के अनुकूल न होगा । मैं सन्यास ग्रहण करूंगा ।

प्रोफ़ेसर पुल से मकान पर लौट आये ।

प्रोफेसर ने मकान पर लौट कर शीतल जल से स्नान किया । नींद में सोई ज्ञानवती को भी जगाकर उसे भी ऐसा ही करने के लिये कहा । फिर उन्होंने हवन किया और यज्ञ की पवित्र अग्नि के सम्मुख बैठी ज्ञानवती को उपदेश दिया—"कल तुमने असंयम और पाप किया है । कन्या का विवाह माता-पिता की अनुमति से होने पर ही उसे गृहस्थ का अधिकार होता है । इसी अपराध का दण्ड मैंने तुम्हें दिया था । आज मैं सन्यास ग्रहण करूंगा । आश्रमों का पालन सब को विधिवत करना चाहिये । मैं योग्य वर से तुम्हारे विवाह की व्यवस्था करूंगा । पाप को स्मरण करने से मन कलुषित होता है । तुम ईश्वर का स्मरण कर प्रतिज्ञा करो कि तुम इस पाप की चर्चा कभी भूल कर भी नहीं करोगी अन्यथा इस पाप के फल से तुम्हारा जीवन कलंकमय और कष्टमय हो जायगा । उचित जीवन ही धर्म का उद्देश्य है । धर्म रक्षा के लिये यही आवश्यक है ।"

जिम्मेवारी

प्रभा ने पढ़ाई से मास्टरनी हो जाने का निश्चय कर लिया तो घर में विरोध हुआ था परन्तु वह करती क्या ? विरोध उसका किस बात में नहीं हुआ था ? बचपन में स्कूल में पढ़ते समय वह पढ़ने में तेज थी परन्तु दुलार होता था उन लड़कियों का जिनके नौकर मोटर में लाकर छोड़ जाते थे। मैट्रिक की परीक्षा में अपने स्कूल में उसके नम्बर सबसे अधिक आये थे। उसे स्कूल की छात्रवृत्ति मिलने की आशा थी परन्तु छात्रवृत्ति दे दी गयी स्कूल के अवैतनिक मन्त्री की बेटी उर्मिला को क्योंकि प्रभा के पिता लड़की को डाक्टरी कालिज में सात वर्ष और पढ़ाने के लिये तैयार न थे।

इस अड़चन के बाद प्रभा ने सोचा बी॰ ए॰ ही पास कर ले ! माता-पिता को इसमें भी कोई लाभ दिखाई न देता था परन्तु उन्होंने उसे कालिज में भरती करा दिया। पिता नौकरी पेशा थे, लड़की के लिये गहना गाँठ कर का प्रबन्ध कर लेना उनके लिये उतना सरल न था। सोचा—पढ़ाई-लिखाई से लड़की की योग्यता जितनी बढ़ जाये, उतना ही उसका पलड़ा भारी हो जायेगा। दहेज के पलड़े में उन्हें शायद कम चढ़ाना पड़े ! आधुनिक विचारों के ऐसे भी लोग हैं जो विद्या की कद्र रुपये से अधिक करते हैं। प्रभा का दिमाग अच्छा था, इसमें तो किसी को भी सन्देह न था।

उस बीच प्रभा के विवाह की बात कई बार चली थी। आजकल का ज़माना है कि लड़के लड़की को देखकर ब्याह करते हैं। एक बार सामने आ कर लड़के देख क्या लेते हैं ? यही तो देख सकते हैं कि चेचक के दाग हैं या नहीं; दोनों आँखें साबित हैं। लड़की को दिखाने के समय यदि प्रसाधन के साधनों से चेचक के दाग छिपा भी लिये जायें तो पड़ोसी और रिश्ते के लोग तो दूसरे की असुविधा में ही अपना मनोरंजन करते हैं। वे पहुँचे हैं खबर

प्रोफ़ेसर के जूते की ठोकर एक झाड़ी से लगी और वे गिरते-गिरते बचे। उसी समय टिटिहरी ने तीखे स्वर में चेतावनी सी दी। प्रोफ़ेसर ने सचेत होकर अनुभव किया—उनके रक्त का वेग तीव्र और शरीर उत्तेजित हो गया था। उन्होंने प्राणायाम से श्वास रोक कर शरीर के आवेग को शांत किया। गायत्री मन्त्र पढ़ा और अपने आपको फटकारा—वह तुम्हारी पुत्री है। संसार की सब युवा स्त्रियां तुम्हारी पुत्रियां, बहनें और माता हैं। सोचने लगे, ब्रह्मचर्य के तप का पालन कितना कठिन है। ब्रह्मचर्य के अमूल्य रत्न को मनुष्य से लूट लेने के लिये कितने दस्यु विचार मनुष्य के पीछे पड़े रहते हैं। ज्ञानवती क्या ऐसे शरीर को लेकर .... । प्रोफ़ेसर ने फिर अपने आपको चेतावनी दी—स्त्री के शरीर का विचार मन में न आना चाहिये। मन को शांत करने के लिये वे निरंतर गायत्री मंत्र का पाठ करते गये।

मकान के दरवाज़े इतनी रात में खुले देखकर प्रोफ़ेसर को नौकर और लड़की की बेपरवाही पर क्रोध आ गया। रोशनी भी नहीं जल रही थी। यह क्या हो रहा है....... क्या नहीं है? ऐसी अवस्था में कोई भी चोर भीतर घुस सकता था।

प्रोफ़ेसर बिना पुकारे भीतर चले गये। अपने कमरे से ज्ञानवती के कमरे के दरवाजे पर जाकर वे उसे पुकारना ही चाहते थे कि सामने चारपाई पर नौकर के साथ लड़की को देख कर उनके हाथ का डंडा उठ गया। डंडा, आहट पाकर उठ खड़े हुए मोतीराम के कन्धे पर पड़ा।

मोतीराम चोट खाकर आंगन के दरवाजे की ओर से भाग गया। प्रोफ़ेसर ने दूसरा डंडा ज्ञान को मारा। ज्ञानवती ने चोट से बचने के लिये बाहें उठा दीं। मुख से वह कुछ कह न सकी।

प्रोफ़ेसर ने डंडा परे फेंक दिया। अस्त-व्यस्त वस्त्रों में चारपाई पर पड़ी ज्ञानवती को थप्पड़ों और घूसों से पीटने के लिये उस पर झुक पड़े। उनके हाथ ज्ञान के शरीर पर जहाँ-तहाँ पड़ रहे थे। ज्ञान के शरीर का स्पर्श उनके हाथों को उत्तेजित कर रहा था। कुछ ही समय पूर्व चांदनी में पगडंडी पर चलते समय ज्ञान के इसी सीने की तुलना लाजो के सीने से करने की स्मृति उनके मस्तिष्क में जाग उठी। उनके क्रोध से धुन्धले मस्तिष्क में अठारह वर्ष पूर्व का चित्र जाग उठा। उनके हाथ ज्ञान के शरीर को पीटने की अपेक्षा गूंधने, नोंचने और पकड़ने लगे।

ज्ञान ने पिता की मार चुपचाप सह ली थी परन्तु उसने पिता के उच्छृङ्खल

हाथों को रोकने का यत्न किया। विरोध में बोली—"पिता जी आप क्या कर रहे हैं ?"

प्रोफेसर मूढ हो चुके थे। उन्होंने ज्ञानवती की पुकार रोकने के लिये उसके मुख पर हाथ रख कर उसे बल से वश मे करना चाहा परन्तु ज्ञान भी तिलमिला कर उनको पकड से छूट गयी और फुफकार कर बोली—"पिता जी, आप मुझ से व्यभिचार करना चाहते है। ऐसा पाप नहीं करने दूंगी।"

प्रोफेसर ने दांत पीस कर ज्ञान को फिर पकड़ने का यत्न करते हुए धमकाया—"पापिन, तू नौकर के साथ व्यभिचार नहीं कर रही थी ?"

ज्ञान ने प्रोफेसर को दोनों हाथों से दूर रखने का यत्न कर निर्भय ऊंचे स्वर मे उत्तर दिया—"नहीं, मैंने ब्रह्मचर्य से युवा पुरुष को वरा है। मैंने गर्भाधान मन्त्र का पाठ कर लिया था।"

प्रोफेसर को काठ मार गया। वे एक क्षण निर्वाक ज्ञान की ओर देखते रहे। फिर लडाई में हारे हुये सांड की तरह चुपचाप तेज कदमों से मकान के बाहर चले गये।

उज्ज्वल चांदनी का चांद पश्चिम की ओर ढलने लगा। प्रोफेसर तीन घंटे से तेज कदमों से घर की परिक्रमा किये जा रहे थे। आत्मग्लानि से उनका मन चाहता था कि ईंट या पत्थर मार कर सिर फोड लें। जीवन भर के व्रत और साधन को वे एक क्षण में कैसे खो बैठे ? ऐसे हीन और तिरस्कृत जीवन से क्या लाभ ? वे समाज को, ससार को मुख दिखाने लायक नहीं हैं। आत्महत्या के सिवा उनके लिये उपाय नहीं है।

प्रोफेसर सिर झुकाये श्याम नदी के पुल की ओर चले गये। पुल से जल में गिर कर समाप्त हो जाना ही आत्महत्या का सरल मार्ग था। वे आत्महत्या के संकल्प से पुल की ओर चले जा रहे थे और सोचते जा रहे थे, अब उनका जीवन पवित्र उद्देश्य के लिये निरर्थक है। यदि वे आत्महत्या नहीं करेंगे तो क्या करेंगे ?

प्रोफेसर अपनी आत्मा की सद्गति के लिये, मृत्यु के समय मन को शान्त और पवित्र रखने के लिये 'ओ३म्' शब्द और गायत्री मन्त्र का पाठ करते जा रहे थे। वे कामना कर रहे थे पुनर्जन्म में वे पूर्ण ब्रह्मचारी तपस्वी बन सकें।

प्रोफेसर के पुल पर पहुंचते ही टिटिहरी ने फिर बहुत तीखे स्वर में पुकारा। प्रोफेसर का उद्वेग शान्त हो चुका था, सोचा—भगवान अब यह क्या चेतावनी दे रहे हैं ? सहसा उन्हें ऋषि वचन याद हो आया—

"असूर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृता,
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति येकेच आत्महनो जनाः।"

(आत्महत्या करने वाले सूर्य के प्रकाश से शून्य नरक लोक में जाते हैं)

प्रोफ़ेसर ने विचार किया—पाप से पाप नहीं धुल सकता। पाप का अन्त प्रायश्चित्त और तप से ही हो सकता है।

नदी के पुल पर वायु अधिक शीतल था। प्रोफ़ेसर बैठ कर सोचने लगे—भ्रम के एक क्षण में पथभ्रष्ट हो जाने से जीवन के उद्देश्य को, परमात्मा के कार्य को क्यों छोड़ दूं ? स्त्री का संग कर्तव्य का अंग है। वह परिस्थितियों का दोष था। मैं कल ही पूर्ण सन्यास ग्रहण करूं......या जीवन में गृहस्थ की आवश्यकता को पूर्ण करता हुआ अपना काम करूं ?......नहीं यह मेरे सम्मान के अनुकूल न होगा। मैं सन्यास ग्रहण करूंगा।

प्रोफ़ेसर पुल से मकान पर लौट आये।

प्रोफेसर ने मकान पर लौट कर शीतल जल से स्नान किया। नींद में सोई ज्ञानवती को भी जगाकर उसे भी ऐसा ही करने के लिये कहा। फिर उन्होंने हवन किया और यज्ञ की पवित्र अग्नि के सम्मुख बैठी ज्ञानवती को उपदेश दिया—"कल तुमने असंयम और पाप किया है। कन्या का विवाह माता-पिता की अनुमति से होने पर ही उसे गृहस्थ का अधिकार होता है। इसी अपराध का दण्ड मैंने तुम्हें दिया था। आज मैं सन्यास ग्रहण करूंगा। आश्रमों का पालन सब को विधिवत करना चाहिये। मैं योग्य वर से तुम्हारे विवाह की व्यवस्था करूंगा। पाप को स्मरण करने से मन कलुषित होता है। तुम ईश्वर का स्मरण कर प्रतिज्ञा करो कि तुम इस पाप का चर्चा कभी भूल कर भी नहीं करोगी अन्यथा इस पाप के फल से तुम्हारा जीवन कलंकमय और कष्टमय हो जायगा। उचित जीवन ही धर्म का उद्देश्य है। धर्म रक्षा के लिये यही आवश्यक है।"

जिम्मेवारी

प्रभा ने वैकाई में भरती हो जाने का निश्चय कर लिया तो घर में विरोध हुआ था परन्तु वह करती क्या ? विरोध उसका किस बात में नहीं हुआ था ? बचपन में स्कूल में पढ़ते समय वह पढ़ने में तेज थी परन्तु दुलार होता था उन लड़कियों का जिनके नौकर मोटर में लाकर छोड़ जाते थे। मैट्रिक की परीक्षा में अपने स्कूल में उसके नम्बर सबसे अधिक आये थे। उसे स्कूल की छात्रवृत्ति मिलने की आशा थी परन्तु छात्रवृत्ति दे दी गयी स्कूल के अवैतनिक मंत्री की बेटी उर्मिला को क्योंकि प्रभा के पिता लड़की को डाक्टरी कालिज में सात वर्ष और पढ़ाने के लिये तैयार न थे।

इस अड़चन के बाद प्रभा ने सोचा बी० ए० ही पास कर ले। माता-पिता को इसमें भी कोई लाभ दिखाई न देता था परन्तु उन्होंने उसे कालिज में भरती करा दिया। पिता नौकरी पेशा थे, लड़की के लिये महंगा योग्य वर का प्रबन्ध कर लेना उनके लिये उतना सरल न था। सोचा—पढ़ाई-लिखाई में लड़की की योग्यता जितनी बढ़ जाये, उतना ही उसका पलड़ा भारी हो सकेगा। दहेज के पलड़े में उन्हें शायद कम चढ़ाना पड़े ! आधुनिक विचारों के ऐसे भी लोग हैं जो विद्या को रूप रंग से अधिक समझते हैं। प्रभा का दिमाग अच्छा था, इसमें तो किसी को भी सन्देह न था।

उस बीच प्रभा के विवाह की बात कई बार चली थी। आजकल का जमाना है कि लड़के लड़की को देखकर ब्याह करते हैं। एक बार सामने आकर लड़के देख क्या लेते हैं ? यही तो देख सकते हैं कि चेहरा के रूप है या नहीं, दोनों आँखें साबित हैं। लड़की को दिखाने के समय यदि पाउडरों से चेचक के दाग छिपा भी लिये जायें तो पहेली और जो दूसरे की आसुविधा में ही अपना मनोरंजन करते हैं ;

[illegible] था [illegible] [illegible] मन कुछ और थी !' जब वह शीलांग के वैकाई हो[illegible] [illegible] में पहुँची, लोगों ने देखा—नयी आने वाली लड़की काफी फैशनेबुल और खूबसूरत थी।

[illegible] ' [illegible]' तीन माह से शीलांग में थी। नीला ने प्रभा के आति[illegible] [illegible] और [illegible] के नाते उससे [illegible] और महेन्द्रपाल जोड़ लिया। जल्दी [illegible] [illegible] [illegible] जगह करा दिया। दफ्तर के बाद सन्ध्या [illegible] [illegible] अफसरों की पार्टियों में या अकेले-दुकेले भी, बार [illegible] [illegible] 'डिनर' के निमंत्रण प्रायः मिलते रहते थे।

[illegible] महायुद्ध में अंग्रेज साम्राज्यशाही के मोर्चे बहुत देशों में दूर-दूर [illegible] हुए थे। इस कारण इस देश के दबे-पिसे, सफेदपोश मध्यम श्रेणी के [illegible] को भी [illegible] फौजी नौकरियाँ पाकर, संतुष्ट जीवन की झांकी [illegible] मिल गया था। बहुत से पढ़े-लिखे लोग जल्दी में जैसी-तैसी [illegible] फौज में 'किंग्स कमीशन' के अफसरी दर्जों में जगहें पा [illegible] थे। [illegible] अफसरों की वर्दी पहन कर यह लोग सहसा उचक [illegible] समाज में ऊँचे हो गये थे। गरीबी और भय से छूटकर इनके मन [illegible] जिसे [illegible] पैदा हो गया था; जैसे राह में मरे [illegible] आदमी [illegible] अनुभव करता है। जीवन में जितनी [illegible] थे, उससे कहीं अधिक तनख्वाह उन्हें मिलने लगी [illegible] दूसरे की स्पर्धा में अधिक पैसा फेंककर दिखाते थे। उनके [illegible] के बोझ से दब नहीं रहे थे बल्कि अहंकार से अकड़ रहे थे।

[illegible] अफसरों के लिये भी अंग्रेज अफसरों की तरह से रहने का अनुशासन था—[illegible] सवारी पर न चलना, दुकानदार से मोल-भाव न कर [illegible] और [illegible] आदि-आदि। ये लोग [illegible] अंग्रेजी [illegible] पहन कर अंग्रेजी [illegible] [illegible] और लड़कियों से [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] लिये उन [illegible] [illegible] [illegible] कारण, इन्हें लोगों ने समाज [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नगद यार और [illegible] [illegible] [illegible] और नीला को [illegible] [illegible]

मिस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बहुत हाजिर [illegible]

थी। प्रभा को भी सध्या पार्टियों में ले जाने लगी। गैर लोगों में बैठने और उनके बेझिझक मजाक में प्रभा को सकोच जरूर अनुभव हुआ परन्तु उसके मन ने उलट कर कहा—सकोच का फल बहुत देख लिया। इन लोगों से क्या सकोच? यह कौन बिरादरी में कहने जा रहे है? ..." जहाँ का जैसा ढग हो! सब बोल रहे हों तो चुप रहना, तमाशा बनना है।

पहले ही दिन जब प्रभा लीला और बनानी के साथ 'ब्राइटग्रोव' (उजले उपवन) बार में गयी, वहाँ मौजूद पाचों अफसर एक से एक तेज थे। लीला ने परिचय कराया—(बातचीत अंग्रेजी में ही होती थी क्योंकि कोई बगाली, कोई मद्रासी, कोई मरहट्टा और बहुत से पजाबी थे,) "यह देखिये, हमारी नवागन्तुक सहेली—मिस प्रभा!"

लीला ने अफसरों का परिचय प्रभा को दिया—"डाक्टर कैप्टन बोस, कैप्टन रईकर रायल सैपर्स। कैप्टन चावला, गढ़वाल राइफल्स। कैप्टन के० आचारी, एम० टी०। कैप्टन श्री गौड एम० टी०।"

कैप्टन बोस ने प्रभा को ऊपर से नीचे तक देख कर लीला से पूछा—"आपका नाम नहीं बताया?"

"क्यों, बताया तो—प्रभा" मजाक समझ न पाने से लीला मुस्करा दी!

"हूँ" बोस ने पूछा, "प्रभा, अगर क्षमा करें तो क्या मतलब होता है इसका?"

"प्रभा का मतलब है, रोशनी—प्रकाश" रईकर ने अंग्रेजी में समझाया।

"ओह, यह आपका नाम है?" बोस समझ लेने के भाव में बोला।

"जी हाँ नाम है और गुण भी है।" लीला ने बोस को उत्तर दिया।

प्रभा ओठ दबा आँखें झपक कर रह गयी।

कैप्टन रईकर ने प्रभा के समीप की कुर्सी पर हाथ रखकर पूछा—"यदि मैं यहाँ बैठूं तो आपको आपत्ति होगी?"

"जी नहीं, जरूर बैठिए!" प्रभा ने साहस से मुस्कराकर उत्तर दिया।

रईकर ने अपना सिगरेट केस खोलकर मंच से पहले प्रभा के सामने पेश किया।

"नो थैंक्स" प्रभा ने विनय से मुस्कराकर कहा, "मैं सिगरेट नहीं पीती।"

रईकर निराशा से होंठ लटकाकर बोला—"पहले ही कदम पर निराशा!"

सिगरेटकेस बनानी के सामने कर उसने पूछा, "और आप क्या कहती हैं?"

बनानी ने रईकर को तिरछी निगाह से देखकर उत्तर दिया—"नि...

बता आयेंगे। लड़की के चेहरे पर 'इंटर' और 'बी० ए०' तो लिखा दिखाई नहीं देता। दिखाई देते हैं, हल्के-हल्के चेचक के दाग। लज्जा से चेहरे पर खून दौड़ आने से दाग कुछ उभर आते हैं। प्रभा के पिता बनावटी सिंगार में और धोखे में घृणा करते थे। बाद में लड़की को गाली सुननी पड़े और बेचारी पर जाने क्या बीते? लड़का देखने आता है तो लड़की की बड़ी-बड़ी आँखें झुकी रहती हैं। सुन्दर आँखें दिखाने में लज्जा दिखाना ज्यादा जरूरी होता है। पढ़ाई, लिखाई; ···लड़की बोल तो पाती नहीं। उसे बोलना चाहिये भी नहीं।

पसन्द की जाने की परीक्षा में फेल हो जाना, लड़की के लिये और सब परीक्षाओं की असफलता से कहीं अधिक मरणान्तक होता है। इस परीक्षा में उसका कोई परिश्रम भी सहायक नहीं हो सकता। यदि वह यत्न करे तो वह कितना उपहासास्पद होगा; कितना अपमानजनक? प्रभा जब इस परीक्षा में फेल हुई तो उसका मन चाहा कि आत्महत्या करले क्योंकि यह एक तरह से उसके स्त्री जीवन के भविष्य का अंत था परन्तु इतनी निर्लज्जता कैसे दिखाती? उसने सोचा—बी० ए० पास करेगी और कुछ काम कर लेगी।

प्रभा कभी अमीनाबाद और हजरतगंज में मोटरों पर घूमने वाली लड़कियों को सिर के केश विचित्र ढंग से बनाये, शरीर की बनावट को गर्व से दिखाने के ढंग से साड़ी पहने, चेहरे की श्यामलता और दागों को गहरे पाउडर से ढके और आंखों को सुरमे की लकीरों से लम्बी बनाये देखती तो सोचती, यह सब क्या वह नहीं कर सकती? परन्तु उसके परिवार के विचार और मुहल्ले के आचार से जीवन का ऐसा उत्साह दिखाना उचित न था; उसे इस का अधिकार नहीं था। ऐसा अधिकार मोटरों पर बैठने वाली स्त्रियों को ही था। वे ईर्षा करने वालों पर धूल फेंकती हुई निकल जा सकती थीं।

सन १९४२ में प्रभा बी० ए० पास करके घर में नौ मास से बेकार बैठी थी। उसके पिता ने प्रभा के लिए कन्या पाठशाला में पैंसठ रुपये मासिक की नौकरी का प्रबंध कर दिया। प्रभा ने कहा वह फौज के दफ्तर में ढाई सौ रु० माहवार पर बैंकाई की नौकरी पा सकती है। बीसियों लड़कियां वहाँ काम कर रही हैं। वह भी वही काम क्यों न करे?

मुहल्ले में प्रभा की निन्दा होने लगी—बड़ी दिलेर लड़की है भाई! परन्तु प्रभा समाज को कहां तक संतुष्ट करती जाती? समाज उसके लिये क्या कर सकता था? समाज तो कहता था—जिंदा भी रहो और सांस भी न लो!

प्रभा वैंकाई नौकरी करके भी अपने मुहल्ले का आचार निबाहे जा रही थी। खाकी रंग की साड़ी बांधना तो अनिवार्य था पर वह मुहल्ले की लड़की या कन्या पाठशाला की अध्यापिका ही दिखाई पड़ती थी, वैंकाई की मिस नहीं।

प्रभा को एक चोट वैंकाई के काम में भी लगी। हिंदुस्तानी कर्नल साहब को एक वैंकाई सेक्रेटरी की जरूरत थी। वैंकाइयों में प्रभा बहुत अच्छी अंग्रेजी लिख लेती थी परन्तु तरक्की मिली मिसेज लतीफ को। मिसेज लतीफ साइकालोजी (Psychology) के स्पेलिंग भी नहीं जानती थी परन्तु कमनीय ललना बनने की कला खूब जानती थी। मिसेज लतीफ का बटुआ कंधे से लटका रहता था। डाकिए के थैले के आकार का वह बटुआ जितना बड़ा था, पैसे उसमें उतने ही कम रहते थे। बटुए में पैसे से अधिक उपयोगी चीजें रहती थीं—पाउडर का कम्पेक्ट, आइना, लिपस्टिक और नेल पेन्ट, प्रेस की हुई साड़ी। मिसेज लतीफ के गर्दन तक फैले बाल फूले-फूले रहते थे जैसे काला रेशम धुन दिया गया हो। चेहरा पाउडर से ऐसा ताजा बना रहता कि बढ़िया सिन्दूरी आड़ू अभी डाल से टपका हो। बाहों पर लगा हुआ लाल धनुष बना रहता और इस धनुष से छूटे तीर आंखों से गुजर कर कानों की ओर खिंचे रहते। ऊबड़ खाबड़ भवें उतारकर पेंसिल से लकीरें बना लेती। इस योग्यता की कद्र में मिसेज लतीफ को कर्नल साहब के सेक्रेटरी की जगह और एक सौ माहवार की तरक्की मिल गयी थी। प्रभा के लिये भी बाजार में यह सब साधन मौजूद थे परन्तु अपने परिवार और मुहल्ले में रहकर वह यह सब न कर सकती थी। अपने पलंग औंधे दबा प्रभा ने सोचा—इस दुनिया में औरत के लिये बी० ए० पास करने का मोल ?

सीमान्त में अधिक वैंकाइयों की आवश्यकता थी। वहाँ भेजी जाने वाली लड़कियों को पचहत्तर रुपये मासिक भत्ता दिया जा रहा था फिर भी लड़कियाँ अपने नगर और प्रांत से इतनी दूर चली जाने से कतरा रही थी। प्रभा ने इसे स्वीकार कर लिया। अपनी जिन्दगी से ईर्षा करने वाले समाज से वह दूर भाग जाना चाहती थी।

सरकारी पास पर फर्स्ट क्लास में सफर करती हुई प्रभा जब साधारण धरातल से ऊंची सोलान में पहुँची तो उसने अनुभव किया कि वह संकीर्णता और बन्धन की दुनिया को पीछे छोड़ आयी थी। अड़तालीस घण्टे से अधिक लम्बे सफर में प्रभा का रूप बदलता जा रहा था। अब यह कहने वाला कोई

नहीं था—'अरे, कल तो यह कुछ और थी !' जब वह शीलांग के बैकाई हैड क्वार्टर में पहुंची, लोगों ने देखा—नयी आने वाली लड़की काफी फैशनेबुल और खूबसूरत थी।

मिस ईलवुड 'लीला' तीन माह से शीलांग में थी। लीला ने प्रभा के आते ही प्रान्त और भाषा के नाते उससे बहनापा और सहेलापा जोड़ लिया। जल्दी ही लीला ने उसका परिचय कई जगह करा दिया। दफ्तर के बाद सन्ध्या समय इन लड़कियों को अफसरों की पार्टियों में या अकेले-दुकेले भी, बार रेस्टोरां में 'टी' और 'डिनर' के निमंत्रण प्रायः मिलते रहते थे।

पिछले महायुद्ध में अंग्रेज साम्राज्यशाही के मोर्चे बहुत देशों में दूर-दूर तक फैले हुए थे। इस कारण इस देश के दबे-पिसे, सफेदपोश मध्यम श्रेणी के नौजवानों को भी अच्छी फौजी नौकरियां पाकर, संतुष्ट जीवन की झांकी लेने का अवसर मिल गया था। बहुत से पढ़े-लिखे लोग जल्दी में जैसी-तैसी ट्रेनिंग पूरी करके फौज में 'किंग्स कमीशन' के अफसरी दर्जों में जगहें पा गये थे। बड़े सैनिक अफसरों की वर्दी पहन कर यह लोग सहसा उचक कर, अपने समाज से ऊंचे हो गये थे। गरीबी और भय से छूटकर इनके मन में गरीबी और भय के लिये तिरस्कार पैदा हो गया था; जैसे राह में मरे पड़े सांप को ठुकराकर आदमी साहस अनुभव करता है। जीवन में जितनी आशा वे लोग कर सकते थे, उससे कहीं अधिक तनखाह उन्हें मिलने लगी थी। वे लोग एक दूसरे की स्पर्धा में अधिक पैसा फेंककर दिखाते थे। उनके कंधे परिश्रम के बोझ से दब नहीं रहे थे बल्कि अहंकार से अकड़ गये थे।

हिन्दुस्तानी अफसरों के लिये भी अंग्रेज अफसरों की तमीज से रहने का अनुशासन था—सस्ती सवारी पर न चलना, दुकानदार से मोल-भाव न कर नोट थमा देना आदि-आदि। वे लोग चुस्त अंग्रेजी पोशाक पहन कर अंग्रेजी में गाली देकर बात करते थे। निधड़क शराब पीते थे और लड़कियों से निस्संकोच परिहास करते थे। उन लोगों ने हिन्दुस्तानी भय और संकीर्णता के बंधन तोड़ दिये थे। मन से सब तरह का भय दूर कर देने के लिये उन लोगों ने समाज का लिहाज सबसे पहले छोड़ दिया था। युद्ध के कारण जगह-जगह बार और रेस्टोरां खुल गये थे। वहीं उन लोगों की संध्या कटती थी और संध्या की प्रतीक्षा में दिन कट जाता था।

मिस ईलवुड 'लीला' आगरा की देसी ईसाई लड़की थी। बेझिझक और बहुत हाजिर जवाब। स्थानीय 'खासी' लड़की बनाली खानमा भी कम तेज नहीं

थी। प्रभा को भी सम्पन्न व्यक्तियों से ऐसे ही मिली। और लोगों से ऐसे और उनके ऐश्वर्य प्रभाव से प्रभा को मनोरम प्रभाव अनुभव हुआ परन्तु उसके मन में उसके बाद कहा—मनोव का फल बहुत देर दिया। इन लोगों से क्या मतलब ? यह कौन बिरादरी में पड़ने जा रहा है ?" "यहाँ का ऐसा ढंग है ! जब ढंग रहे हो तो कुछ रहना, रहना पड़ता है।

दूसरे ही दिन वह प्रभा मीरा और बनानी के साथ 'कारटोर' (उनके उनवान) बार में गयी। वहाँ मौजूद चार अफसर एक मेज पर थे। मीरा ने परिचय कराया—(कारटोर अंग्रेजों के ही होते थे क्योंकि कोई बंगाली कोई मद्रासी, कोई मराठा और बहुत से पंजाबी थे।) यह देखिए, हमारी नवागन्तुक सहेली—मिस प्रभा।"

मीरा ने अफसरों का परिचय प्रभा को दिया — डाक्टर कैप्टन सोंग, कैप्टन हर्बर्ट सायमन रोज। कैप्टन मासगल, लफ्टनेंट मलहोत्रा। कैप्टन के० भण्डारी, एम० टी०। कैप्टन खी मोर एम० टी०।'

कैप्टन सोंग ने प्रभा को ऊपर से नीचे तक देख कर मीरा से पूछा—"आपका नाम नहीं बताया ?"

"कहो, बताया तो—प्रभा" मतलब समझ न पाने से मीरा मुस्करा दी।

"हूँ" सोंग ने पूछा, "प्रभा, अगर क्षमा करें तो क्या मतलब होता है इसका ?"

"प्रभा का मतलब है, सोंगजी—प्रकाश" हर्बर्ट ने अंग्रेजी में समझाया।

"ओह, यह आपका नाम है ?" सोंग समझ लेने के भाव से बोला।

"जी हाँ नाम है और गुण भी है।" मीरा ने सोंग को उत्तर दिया।

प्रभा ओठ दबा आँखें झुका कर रह गयी।

कैप्टन हर्बर्ट ने प्रभा के समीप की कुर्सी पर हाथ रखकर पूछा—"यदि मैं यहाँ बैठूँ तो आपको आपत्ति होगी ?"

"जी नहीं, जरूर बैठिए!" प्रभा ने साहस से मुस्कराकर उत्तर दिया।

हर्बर्ट ने अपना सिगरेट केस खोलकर सब से पहले प्रभा के सामने पेश किया।

"नो थैंक्स" प्रभा ने विनय से मुस्कराकर कहा, "मैं सिगरेट नहीं पीती।"

हर्बर्ट निराशा से होंठ मटकाकर बोला—"पहले ही कदम पर निराशा !" सिगरेटकेस बनानी के सामने कर उसने पूछा, "और आप क्या कहती हैं ?"

बनानी ने हर्बर्ट को तिरछी निगाह से देखकर उत्तर दिया—"निराशा

पर निराशा होने से दिल पर बुरा असर पड़ता है। फिलहाल मैं आपको निराश नहीं करूंगी।" उसने एक सिगरेट ले लिया।

सब हँस रहे थे, सब मुस्करा रहे थे और बार-बार प्रभा की ओर देख रहे थे। प्रभा भी मुस्करा रही थी और अवसर की प्रतीक्षा में थी कि वह भी बोलकर अपनी झेंप मिटा दे।

लीला ने स्वयं हाथ बढ़ाकर सिगरेट ले लिया। सिगरेट ओंठों में दबाकर मेज पर से माचिस उठा, एक सींख जलाकर बोली—"लो, मैं सबके सिगरेट सुलगा दूँ!"

बोस अपनी कुर्सी से आगे बढ़कर बोला—"ग़नीमत है, कुछ लोग तो सुलगा देते हैं।"

सब लोग हँस पड़े।

प्रभा ने कनखियों से देखा। बोस दूसरी ओर दीवार पर देख रहा था जैसे उसे नहीं कहा परन्तु सब जानते थे, किसे कहा गया है। वह और भी लजा गयी।

लीला बार-बार पूछ रही थी—"कैप्टन बोस आपका दिल किसने बुझा दिया?"

बात टल गयी और पंजाबी कैप्टन चावला सुनाने लगा कि कोहीमा के जंगल में भटक जाने पर कैसे बच कर निकला। जंगलों में नागा लोगों की बस्ती है, बहुत ही भयानक लोग हैं। हम लोगों को देखते ही मार डालते हैं। गले में खुद कत्ल किये आदमियों के मुण्डों की माला पहने रहते हैं। कत्ल करने का उन्हें अभिमान है।

बोस ने टोक दिया—"कत्ल करने की निन्दा तुम कैसे कर सकते हो? तुम्हारा पेशा क्या है?"

कैप्टन चारी के हुक्म से बैरा साहब लोगों के लिये ह्विस्की ले आया था और सब लोगों की इच्छानुसार गिलासों में सोडा डाल रहा था। दूसरे बैरे ने एक तश्तरी में गुलाब की कली के आकार की गिलासियों में गहरे लाल रंग का द्रव लेडीज के सामने पेश कर दिया।

बनानी और लीला ने थैंक्स कह कर गिलासियाँ ले लीं। तश्तरी प्रभा के सामने आयी। वह जानती थी शराब है। इनकार करेगी और फिर मजाक होगा। उसका सिर हिल गया और मुख से निकल गया—'नो थैंक्स।"

हुईकर ने गहरी निराशा प्रकट की—"हर बात में इन्कार!"

मीना ने भवें सिकोड़ कर प्रभा की ओर देखा—"अरे क्या है, इसमें? यह तो पोर्ट है, दवाई है। पूछ लो डाक्टर से!"

"नहीं" बोस सिर हिलाकर बोला, "इस समय तो यह शराब ही है।"

प्रभा मौन रही।

बोस अपना गिलास तिपाई पर रखकर विरोध के स्वर में बोला—"तो हम भी नहीं पीते सिर्फ एक ही जना अकेला क्यों स्वर्ग जाय!"

सभी लोगों ने कहा—"ठीक तो है!" और अपने-अपने गिलास सत्याग्रह के अभिनय से तिपाइयों पर रख दिये।

प्रभा शरम और उलझन में मरी जा रही थी। मीना ने उसे फिर प्रोत्साहन दिया—"ले लो प्रभा, इसमें कुछ नहीं है। यह तो कुछ है ही नहीं। तुम्हारे साथ हम भी तो ले रही हैं।"

प्रभा ने आँखें झपककर मन में कहा—अब जो हो! उसने भी गिलासी उठा ली।

चारों गिलास उठा कर, बोला—"अच्छा भाई, किसके नाम पर? (प्रपोज़ द टोस्ट) बोस, बोलो, टोस्ट बोलो!"

बोस गिलास ऊँचाकर बोला—"नयी रोशनी के लिये!"

सब लोगों ने समर्थन किया—"वाह! ठीक-ठीक!" सभी को गिलास एक साथ होंठ से लगाते देख प्रभा को भी लगाना पड़ा। मीठा-मीठा तीखा सुगन्ध लिये स्वाद था। मीना और बनर्जी ने एक घूंट में आधी-आधी गिलासी पी ली थी। दो ही घूंट तो थे।

चावला अपनी बात शुरू करते हुये बोला—"जंग और कत्ल में क्या सुनना?"

मीना बोल उठी—"और इश्क के बारे इन सब एक बार—(जंग और मुहब्बत में सब जायज)"

रईकर ने उसकी ओर झुककर प्रश्न किया—"तुमने मुहब्बत में कितने कत्ल किये हैं?"

मीना ने भवें सिकोड़कर कहा—"तुम्हें मतलब? क्या मुकद्दमा चलाना चाहती हो?" और सबकी ओर समर्थन के लिये देखकर हँस पड़ी।

रईकर अपनी बात पर डट गया—"मर्डर के मामले की जाँच जरूर होनी चाहिये। कत्ल होने वाला मुहब्बत की अदालत में अपील फरियाद करे तो न्याय होना ही चाहिये। क्यों बोस? बोलो!"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

साधारणतः अफसरों के लिये साढ़े आठ बजे दफ़्तरों से लौट आने का नियम था परन्तु यह शनिवार की रात थी। सिनेमा का समय दफ़्तरों की सीमा के बाहर था। बॉब को भी, दफ़्तरी में खाने की कमी के कारण, बाहर खाना मिला हुआ था। मकारोनी, स्टेक और भाजी के साथ 'रेड वाइन' (शराब) से तरी मिली थी। नीना और प्रभा साथ गयीं और बॉब के साथ सिनेमा गयीं। नीना और प्रभा बीच में थीं। एक ओर नीना के साथ जायना और दूसरी ओर प्रभा के साथ बॉब बैठा था। प्रभा देख नहीं रही थी परन्तु ध्यान तो था कि जवान मर्द साथ बैठा है।

लौटते समय बादल छंट गये थे और तारों की आगी रात की कड़ाके की सर्दी होगयी थी। प्रभा सर्दी से सिकुड़ी जा रही थी परन्तु मन में सुन्दर गरमी थी। अच्छा लग रहा था। भीतर गरमी हो तो बाहर की सर्दी अच्छी लगती है। वैकार्ड क्वार्टर के बंगले के दरवाजे पर उन लोगों ने "चीरियो-चीरियो" पुकार के विदा ले ली।

प्रभा कड़ी सर्दी से आयी थी। उसे बन्द कमरे की गरमी और बिजली की रोशनी बहुत भली लग रही थी। उसने रात के लिये नये सिलाये रेशमी

कपड़े पहने । चेहरे पर कोल्ड क्रीम लगाया । बालों को बल देकर लहरें बनाने के लिये रेशमी रूमाल से बांध लिया । आइने की ओर उसने मुस्कराकर देखा—खामुखा, उसे बिगाड़ कर, भद्दा बना कर रखा गया था । अब वह स्वतत्र थी, सुदर थी और जी रही थी ।

बिस्तर मे घुस कर बिजली बुझा लेने के बाद अन्धेरे मे प्रभा को साँझ की पार्टी की बातें याद आने लगीं । वह सबको कितनी अच्छी लग रही थी । अच्छी लगना क्या चीज है, जिन्दगी है ! उसने कल्पना की—कल अपना नया फिट जम्पर पहनेगी, कमर पर साड़ी से एक इन्च ऊंचा । वह नये खरीदे विलायती अँगिया से शरीर पर आने वाले उभार की कल्पना करने लगी । साड़ी को कमर पर खींच कर और कन्धे पर एक ओर समेट कर चलेगी तो नजरों पर तैरती हुई ! उसे कल्पना मे सैकड़ो चमकती हुई आँखें दिखाई दे गयीं जैसे निर्मेघ काले आकाश मे तारे चमचमा रहे थे । प्रभा आराम और उत्साह के झूले में झूलती हुई सो गयी ।

प्रभा को अनुभव हो रहा था—उसे सड़ियल गोदाम मे मूंद कर रखा गया था । दरवाजे तोड़ कर वह बाहर निकल आयी थी और स्वच्छ, स्वतत्र वायु में श्वास ले रही थी । शीलांग की जलवायु उसके शरीर को स्फूर्ति दे रही थी और लोगों पर अपने अस्तित्व का प्रभाव उसके मन को प्राण-शक्ति दे रहा था । कहां तो वह मन मारे सोचती रहती थी—दुनिया मे उसके लिये यह भी नही, वह भी नही, कुछ नही और अब वह देखती थी—कहां 'हां' करे ? अब निमत्रण स्वीकार करने की अपेक्षा इनकार करने में अधिक गर्व अनुभव होता था । इसमे समृद्धि का मानसिक सतोष था ।

यों पार्टियां होती ही रहती थी, शनिवार की रात लम्बी पार्टी होती थी । अफसरों के लिये इन पार्टियो का मतलब होता कर्जा । लीला पार्टी मे जाना चाहती तो किसी अफसर से पूछ लेती—"आज कहां जा रहे हो ?"

बनाती खानसामा बुलाने पर मुस्कराकर मान जाती ।

नीता और प्रभा को सोचना पड़ जाता—"कहां जायें ? कहां इनकार करें ?"

प्रभा को बोस की चुटीली बातें अच्छी लगती थीं और तुर्की-बतुर्की जवाब देकर लोहा लेने मे मजा आता था । बोस खूब साफ-मुंडे, पतले होंठ दबाए, भवें सिकोड़े कुर्सी की बांहों पर तबला-सा बजाता रहता, तब भी अच्छा लगता था । कभी-कभी वह लगातार उसकी ओर देखता रह जाता तो प्रभा को

आंखें फिरा लेनी पड़तीं। प्रभा को अपने चेहरे पर वह आंखें गड़ने से बुरा नहीं लगता था। खून में एक चुटकी सी अनुभव हो जाती थी।

उस शनिवार की पार्टी में अफसर लोग तीसरी बार ह्विस्की ले रहे थे। लेडीज़, पोर्ट की तीसरी गिलासी चूस रही थीं। केप्टन श्रीवास्तव खानमा से 'खासी' समाज के मातृसत्ताक पारिवारिक ढंग पर मजाक कर रहा था। रूईकर इस प्रथा की ऐतिहासिक व्याख्या करने लगा। नशे की शिथिलता के कारण बहस बहकती जा रही थी।

लीला को इस रूखी बहस में रस नहीं आ रहा था। वह बोस के सामने बैठी थी। सिगरेट का एक लम्बा कश बोस की ओर छोड़ कर बोली—"तुम ऐसे घूर क्यों रहे हो जी ?"

प्रभा जानती थी बात उसे ही लगायी गयी थी। बात को उलटने के लिये उसने लीला से पूछ लिया—"कितनी देर तक घूरने पर पता लगा ?"

बोस ने इस पैंतरे का फ़ायदा नहीं उठाया और लटकते हुये स्वर में बोला—"देखने लायक चीज़ हो तो देखा ही जाता है। उससे संतोष होता है।"

लीला ने हंसकर तीखे स्वर में विरोध किया—"देखियेगा या आंखों से निगल जाइयेगा ?"

बोस और बढ़ गया—"प्रार्थना का और क्या ढंग हो सकता है ?"

लीला ओठों पर हाथ रख कर खिलखिला उठी—"या मेरे अल्ला, डाक्टर को चढ़ गयी।"

खानमा ने गुलाबी आंखों के कोने से बोस की ओर देखकर ओठों के कोने से धुएं का फुहारा छोड़ते हुए चेतावनी दी—"दोस्त, ब्यूटी इज़ टु सी, नाट टु टच—सौंदर्य दर्शन के लिये है स्पर्श के लिये नहीं।"

बोस ने गिलास में बचा हुआ घूंट निगल कर पूछा—"सौन्दर्य है क्या ?"

लीला ने ठोड़ी के नीचे उंगली रख उत्तर दिया—"फूल सौन्दर्य है।"

बोस ने तुरन्त ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"इसीलिये नहीं रहता, वह फल बन जाता है। यही सौन्दर्य का उपयोग है।"

गौड़ ने अपनी जगह से हाथ हिला कर कहा—"सभी फूलों में सुगन्ध नहीं होती।"

"तेज़ सुगन्ध वाले फूलों में फल नहीं लगते, वे केवल सजावट के लिए होते हैं।" रूईकर बोला, "और यह गढ़ा हुआ सौन्दर्य हमें तो नहीं भाता। कौन जाने पाउडर की तह के नीचे क्या है ? कितनी झुर्रियां या चेचक के

दाग हैं। लिपस्टिक की तह के नीचे क्या है ? शायद सूखे हुए छुहारे की फाकें !"

चावला ने आँखें तरेरी—"होश करो !"

प्रभा को भी बहुत बुरा लगा—"यह क्या बक रहा है ?"

लीला ने भी नाराजगी प्रकट की—"कैप्टन तुम बहुत बढ़ गये !"

खानमा ने मुस्करा कर पूछ लिया—"अंगूर खट्टे कब होते हैं ?"

बोस बोला—"सुनो रूईकर, तुम हो पागल ! पाउडर की तह के नीचे क्या है, इससे तुम्हें मतलब ? तह में जाना चाहते हो ? सुन्दर कोमल त्वचा के नीचे क्या होता है ? तुम्हें सुन्दर त्वचा तो आकर्षक जान पड़ती है। अगर तुम्हें किसी स्त्री की त्वचा उतार कर सौंप दी जाय, क्या करोगे ? शरीर और शृंगार का समन्वय ही परिष्कृत सौन्दर्य है !"

प्रभा ने सराहना से उसकी ओर देखा। बोस के माथे पर उसे प्रतिभा झलकती दिखाई दी।

"यह दर्शन शास्त्र हमारे बस का नहीं भाई" खानमा उठ खड़ी हुई। चावला की ओर सम्बोधन कर बोली, "चलते हो डांस पर ?"

रूईकर ने बोस को सम्बोधन किया—"फिल्म देखोगे ?"

"आज चांदनी में घूमेंगे।" बोस ने उत्तर दिया।

प्रभा ने उठकर अपना ओवरकोट सम्भाला। बोस ने उसका कोट लेकर सहायता के लिये उसकी पीठ पीछे फैला दिया और धीमे से पूछा—"चांदनी में थोड़ा घूम आयें ?"

रूईकर ने भी प्रभा को सम्बोधन किया—"फिल्म देखी जाय ?"

प्रभा ने विनय से मुस्कराकर उसे उत्तर दे दिया—"आज माफ कीजिये।" वह बोस की ओर बढ़ गयी।

बोस और प्रभा 'सविया' के पास से नगर के चारों ओर घूम जाने वाली सड़क पर उतर गये। दोनों चुप थे। चुप्पी तोड़ने के लिये बोस बोला—"कैसी पगली चांदनी है ?"

"आप तो यों ही पागल हैं !" प्रभा के मुँह से निकल गया।

"क्यों ? ... "क्या सचमुच ?" बोस ने उसकी ओर देखकर पूछा।

"बातें तो ऐसी ही करते हैं।" प्रभा आँखें झुकाये रही।

वे लोग कचहरी के पास से जा रहे थे। बैंसाइयों का बंगला बाईं ओर समीप ही था परन्तु बोस डाकखाने की ढलवान से राह को ओर उतरने

[illegible]

"मुझे नहीं मालूम ।" [illegible]

"क्या तुम्हें मतलब नहीं मालूम ?"

"क्या ?" [illegible] प्रभा [illegible]

"कि मैं तुम्हें [illegible] चाहता हूँ ?"

प्रभा मौन रही । मानो [illegible] गया हो । सड़क भी दिखाई नहीं दे रही थी ।"

कुछ पल बाद बोस ने कहा—"[illegible] मुझे [illegible] है । तुम मुझे [illegible]"

प्रभा का शरीर [illegible] गया । क्या उत्तर देती ।

"हम बहुत दूर आ गए !" प्रभा ने कहा ।

"तुम्हें मेरा साथ अच्छा नहीं [illegible] रहा । मुआफ करना साथ आने के लिये कहा । चलो लौट चलें !"

"कब कहा मैंने" तुरंत प्रभा मीठी झुंझलाहट से बोली, "क्यों दोष लगा रहे हो !"

बोस ने उसे सहारा देने के लिये उसकी बांह अपनी बांह में ले ली और रुक-रुक कर बात कहता रहा ।

प्रभा चुप थी ।

बोस ने असंतोष से कहा—"तुम चुप क्यों हो ?........अच्छा नहीं लग रहा ?"

"क्या कहूं ? जानते नहीं ?" प्रभा कह गयी परन्तु उसका दिल ऐसे धड़क रहा था जैसे बहुत चौड़ी खाई कूद जाने में हांफ गयी हो।

रात ग्यारह बजे प्रभा बंगले में अपने कमरे में पहुँची। मनमें पछता रही थी—क्यों उसने बोस से देर होने की बात कही ? अभी वे लोग कुछ देर और घूमते। याद आ रहा था कि यह कहना चाहती थी, वह कहना चाहती थी पर कह नहीं पायी थी।

बिस्तर में लेटने से पहले उसने सुबह चेहरा ताजा और कोमल दिखाई देने और बालों में प्यारी-प्यारी लहरें रहने का उपचार किया। आइने में अपने प्रतिबिम्ब की ओर मुस्कराकर कह रही थी—बोस को कितना अच्छा लगेगा।

नींद न आने पर भी जब वह आँखें मूंदकर लेट गयी थी। उसे निर्मेघ काले आकाश में, चमचमाती आंखों की तरह अनेक नक्षत्र नहीं दिखाई दे रहे थे, चांदनी रात के आकाश में केवल एक चन्द्रमा दिखाई दिया—बोस !

प्रभा उत्कट उत्सुकता में सन्ध्या की प्रतीक्षा करके पार्टी में जाती तो कनखियों से बोस के संकेत की प्रतीक्षा करती रहती कि उठकर चल दे। वह बोस की ओर कई बार देख चुकी थी। बोस दूसरा पेग ले रहा था। प्रभा को लग रहा था—इसमें क्या रखा है ? बोस के साथ घूमने और टूटे-टूटे स्वर में बात करने की अपेक्षा पोर्ट और ह्विस्की में क्या रखा है ? " "फिजूल है !"""""समय बरबाद करना है !

आखिर बोस ने एक सिगरेट सुलगा कर साथियों की ओर देखा—"हम जा रहे हैं, एक काम है।" प्रभा को उसने सम्बोधन किया, "आप चलेंगी ? आपको मामन के यहां जाना था ?"

"हां काफी देर तो हो गयी।" प्रभा तुरन्त उठ खड़ी हुई।

बोस और प्रभा अंधेरे में सचिवा से उतरने वाली पगडण्डी पर कंधे से कंधे सटाये सड़क पर उतर गये। आगे समतल सड़क थी परन्तु दोनों सड़क छोड़कर बड़ी झील की ओर उतरने वाली पगडण्डी में उतरने लगे। प्रभा को सकरी पगडण्डी के पत्थरों पर लुढ़क-लुढ़क कर बोस के कंधे पर गिर पड़ना अच्छा लग रहा था।

बोस अतीन्द्रिय (आध्यात्मिक-मानसिक) प्रेम और शारीरिक प्रेम की व्याख्या करता जा रहा था। वह पी लेता था तो दार्शनिकों की तरह बात करने लगता था। प्रभा को भी वह अच्छा लगता था—व्यक्तिगत रूप से तो

बात कहना कठिन हो उसे विज्ञान या सिद्धांत रूप से कह देने का साहस सरलता से किया जा सकता है।

प्रभा ने कहा—"प्रेमी के सामने न होने पर भी उससे प्रेम रहता है इस लिये प्रेम इन्द्रिय की अपेक्षा मन का विषय है। प्रेम में मर जाने से भी तो सुख होता है। प्रेम में लोग आत्म-हत्या भी कर लेते हैं? उसमें इन्द्रिय तृप्ति तो नहीं होती परन्तु प्रेम का चरम संतोष हो सकता है?"

बोस ने कहा था—"मन को तुम यदि भौतिक पदार्थ न भी मानो तो जिसे कभी आंखों से नहीं देखा, जिसे जानते ही नहीं, उससे तो प्रेम नहीं किया जा सकता। प्रेम करने से पहले जानना जरूरी है। प्रेम का एक अर्थ बहुत अधिक जान लेना और, और भी अधिक जानने की कामना भी तो है? जिसे कम जानते हैं, उसे प्रेम नहीं कर सकते। जाना जाता है इन्द्रियों से इसलिये प्रेम का आरम्भ होता है इन्द्रियों से तो उसकी पूर्णता भी इन्द्रियों से ही सम्भव है। दूसरी बात, सृष्टि में प्रेम का प्रयोजन क्या है? यदि समाज में सब लोग मानसिक प्रेम ही करें, इन्द्रियों से प्रेम का सम्बन्ध न होने दें तो समाज का या प्रेम का परिणाम क्या होगा? ...... शून्य! फिर प्रेम करने वाले रहेंगे ही नहीं!"

प्रभा निरुत्तर हो गयी, हार गयी। यह हार उसे बुरी नहीं लग रही थी। चाहती थी एक बार और हार जाये। बोस और कुछ नहीं कह रहा था।

झील के किनारे-किनारे जगह-जगह तख्ते जड़ कर बैठने की जगहें बना दी गयी हैं। सुनसान में केवल झींगुर का तीखा स्वर सुनाई दे रहा था। वह भी सर्द ओस में भीग कर धीमा पड़ रहा था। आकाश से बरसती कालिमा के बोझ से, चारों ओर से घिरे घन पेड़ों के पत्ते भी निश्चल हो गये थे। उस अंधेरे में वे दोनों पास-पास मौन बैठे थे।

उस सुनसान को तोड़ने के भय से गर्दन झुकाये बोस बहुत धीमे गहरे स्वर में बोला—"प्रेम में व्याकुल युगल एकान्त क्यों ढूंढते हैं?"

प्रभा सिहर उठी। वह घुटनों पर ठोड़ी रखे चुप रह गयी, आंखें मूंद लीं। ...... झील के इतने किनारे आ जाने पर बोस की बांह के सहारे के [illegible] पानी में गिर पड़ेगी। वह उसकी बांह के सहारे के लिये [illegible] थी परन्तु प्रतीक्षा में निश्चेष्ट थी।

[illegible] बात नहीं कही परन्तु बोस का अधीर स्वर फिर सुनाई [illegible] तुम नहीं समझती?"

अब प्रभा को बोलना ही पड़ा—"प्रेम, विश्वास और भरोसे में समझने को शेष क्या…… …"

प्रभा ने हृदय के सम्पूर्ण साहस से इतनी बड़ी बात कह डाली परन्तु बोस गुम्म बैठा रहा। प्रभा व्याकुलता से अधीर हो रही थी—"जो होता है…। बिना सहारे तलवार की धार पर कैसे खड़ी रहे?" आतुर हो उसने अपना सिर बोस के कन्धे से टिका दिया।

बोस कुछ ठहर कर बोला। उसका स्वर सम्भला हुआ था—"भरोसे का मतलब कुछ और भी हो सकता है।……हम तुम मित्र हैं। आपस में धोखा नहीं होना चाहिये। मित्र व्यक्तिगत रूप से अपने-अपने लिये जिम्मेवार होते हैं। मेरी सीमाय है। मेरा परिवार है।…… हम केवल मित्र हैं।"

प्रभा पाव तले का पत्थर खिसक जाने से सहसा पीछे हट गयी। शरीर पसीना-पसीना हो गया था। अपने आपको सहसा सम्भाल कर और गर्दन उठा कर उसने बोस के चेहरे की ओर देखकर स्पष्ट स्वर में पूछा—"क्या?"

"मैं ठीक कह रहा हूँ।" बोस ने उसकी ओर देखा, "मैं तुम्हे प्यार करता हूँ इसलिये धोखा और झूठी आशा नहीं देना चाहता।"

"हूँ!" प्रभा ने गर्दन झुका ली।

बोस भी कुछ देर चुप रहा और फिर बोला—"मेरी सचाई से तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिये।"

"धन्यवाद!"

कई मिनिट चुप रहने के बाद बोस फिर बोला—"चलो तुम्हें टैक्सी तक पहुँचा दूँ।"

"धन्यवाद" प्रभा ने हाथ कोट की जेबों में धसाकर कोहुनियाँ समेटते हुये उत्तर दिया, "मैं अपने लिये जिम्मेवार हूँ। मैं टैक्सी तक आ सकती हूँ।"

"लेकिन तुम्हें यहाँ कैसे छोड़ सकता हूँ?"

"धन्यवाद, यहाँ छोड़ दिया।"

बोस फिर चुप बैठा रहा। प्रभा बोली—"आप परेशान न हों। आती हूँ तो लौट भी जाऊंगी। अपने लिये जिम्मेवार हूँ।"

"बहुत बुरा मालूम होगा।"

प्रभा मजबूरी से उठी और आगे-आगे चल दी। पगडण्डी पर कई बार पांव उखड़ा परन्तु ऐसे सन्नाटा खींचे थी कि बोस की हिम्मत सहारा देने की न हुई। वह चुपचाप पीछे-पीछे चला आ रहा था।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ......परन्तु इसको दुनियां में लाने का अधिकार उसे नहीं है।

अंधकार घना हो गया...... बेचारी ......नवजात शिशु शरीर, [illegible] को आंचल में छिपाये छिपने के लिये भाग रही है। उसका पीछा करते लोग चिल्ला रहे हैं व्यभिचारिणी! ......यह किसका है?......इसे क्या अधिकार है? इसके लिये कौन जिम्मेवार है?"

प्रभा चौंक कर उठ बैठी। शरीर पसीना-पसीना हो गया था। हृदय धड़क रहा था। उसने माथा पकड़ कर सोचा—क्या मिथ्या स्वप्न? ...शरीर पर अधिक गरम कपड़ा होने से घबराहट के कारण पसीना आ गया।...मुझे क्या भय? समझ सोचकर होश में आ रही थी।...अपनी जिम्मेवारी समझती हूं।

सशस्त्र क्रांति के प्रयत्नों की कथा

सिंहावलोकन

जान हथेली पर लिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लड़ने वालों का जीवन कितना रोमांचकारी रहा होगा, अपने आदर्शों के लिये उन लोगों ने क्या-क्या सहन किया, वह सब कहानी रोचक उपन्यास से भी अधिक रोमांचक है। इन संस्मरणों में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की हत्या का बदला लेने, देहली असेम्बली बम-काण्ड, वायसराय की ट्रेन को बम से उड़ाने, राजनैतिक बन्दियों को छुड़ाने के लिये जेल पर आक्रमण की तैयारी, क्रांतिकारियों और पुलिस में आमने-सामने लड़ाई की घटनाओं का ब्योरेवार वर्णन यशपाल ने तीन भागों में किया है। पत्र-पत्रिकाओं ने इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा की है, उस की संक्षिप्त चर्चा के लिये भी यहां स्थान नहीं।

प्रकाशक